भगवान गौतम बुद्ध एवं भारतीय समाज (बौद्ध धर्म के उदय से 12वी शताब्दी तक)
ISBN: 978-93-93166-10-4

भगवान बुद्ध और उनके द्वारा किए गए सामाजिक सुधार(महापंडित राहुल सांकृत्यायन की दृष्टि में)

For verification of this chapter, please visit on
http://www.socialresearchfoundation.com/books.php#8

डॉ. निमिता वालिया

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिंदी साहित्य विभाग

श्रीमती नर्बदा देवी बिहानी गवर्नमेंट पी0 जी0 कॉलेज

नोहर, हनुमानगढ़ राजस्थान भारत

Chapter ID: 15998

This is an open-access book section/chapter distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

सारांश

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वैदिक कर्मकांडो की जटिलता में समाज जकड़ा हुआ था और ब्राह्मणों का धर्म पर एकाधिकार था। ऐसी दशा में संस्कृत के स्थान पर जन भाषा में आर्त्त लोगों के लिए धर्म आचरण का सरल मार्ग सुझाने का कार्य महात्मा बुद्ध ने किया। यह धर्म वेद-वचन को प्रमाण नहीं मानता, वर्ण-व्यवस्था,

ISBN: 978-93-93166-10-4

कर्मकांड और बलि-प्रथा में विश्वास नहीं करता, ईश्वर की सत्ता को भी नहीं मानता, क्योंकि ईश्वर व देवता में आत्मा मानव को निष्क्रिय बनाती है सदाचार से ही व्यवस्थित उच्च स्तर पर पहुँचकर जीवन-मरण से मुक्ति पाता है, कदाचार से व्यक्ति अधोगति पाता है। अपने व्यावहारिक दृष्टिकोण जाति-पाँती, ऊँच-नीच के विरोध तथा सादगी के कारण इस धर्म को देश के भीतर और बाहर फैलते देर नहीं लगी। बुद्ध के उपदेश मौलिक थे, उनके निर्वाण के बाद बिहार के राजगृह में पहली बौद्ध संगीति हुई, जिसमें बुद्ध के तीन शिष्यों- काश्यप, उपालि और आनंद ने उनकी शिक्षाओं को दोहराया। दूसरी संगीति वैशाली में, तीसरी अशोक के समय और चौथी कुषाण सम्राट कनिष्क के समय आयोजित हुई। मौखिक परम्परा में प्रवहमान सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य को तीन भागों में लिपिबद्ध किया गया, जो 'त्रिपिटक' कहलाते हैं। सुत्तपिटक में बुद्ध के उपदेश हैं, विनयपिटक में भिक्षुसंघ के आचार-विचार और नियम हैं, अभिधम्म पिटक में बौद्ध धर्म के दार्शनिक विचार हैं। बुद्ध को कुछ लोगों ने महापुरूष माना, जिनके बताए मार्ग से निर्वाण-प्राप्ति संभव थी। इनका मानना था कि बुद्ध की न तो मुर्ति बने और न पूजा की जाए। इन लोगों को 'हीनयान' कहा गया, जबकि कुछ लोगों का मानना था कि बुद्ध से पहले भी अनेक बुद्ध हुए हैं और आगे भी होंगे। इस मत के लोगों ने बुद्ध की प्रतिमाएं बनाई, पूजा भी प्रारम्भ कर दी। इसके मत को 'महायान' कहा गया। इस मत के मानने वालों ने पालि में रचित बौद्ध साहित्य को संस्कृत में भी रचना शुरू कर दिया। एशिया के अनेक देशों में बौद्ध-धर्म पृथक् अस्तित्व कायम रख सका, पर भारत में हिंदू धर्म ने बुद्ध को अपने में आत्मसात् करते हुए उन्हें अवतार मान लिया। इस प्रकार दोनों धर्मो के बीच का अंतर मिटता रहा। बौद्ध धर्म की पूर्व बुद्धों

ISBN: 978-93-93166-10-4

या बोधिसत्वों की 'जातक कथाओं' से सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्म में पुनर्जन्म एवं आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। सार-रूप में कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म दर्शन एवं जीवन की आचार संहिता है।

मुख्य शब्द

प्रक्षालन, कृशकाय, अनात्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, अनीश्वरवाद क्षणिकवाद, आतुरालय, अवश्यंभावी, सनातन।

प्रस्तावना

भारत सर्वधर्म सद्भाव के पथ पर सदैव अग्रसर रहा। यह सब धर्मों की शरण-स्थली रहा है। क्या आंतरिक, क्या बाहरी धर्मों को सहर्ष स्वीकार कर सहृदयता की एक नई परिभाषा मुखरित की है। देश में जहाँ हिंदू-धर्म का डंका बजता है वहीं जैन, सिख, ईसाई, पारसी, मुस्लिम, यहूदी आदि धर्म भी अपना-अपना महत्व सिद्ध किए हुए हैं। इन सभी धर्मों से अपनी अलग पहचान बनाता धर्म है - बौद्ध धर्म। जिसकी स्थापना महात्मा बुद्ध ने की। आम तौर पर देखा जाए तो हर धर्म मंे एक सर्वगुण संपन्न भगवान की अवधारणा रहती है, किंतु महापुरूष बुद्ध की तुलना देवी-देवताओं से करना उचित नहीं, हमारे देश में बड़े-बड़े महापुरूषों का जन्म सामान्य बात रही है। पर बुद्ध को जिस दृष्टि से देखा परखा जाता है वैसा महापुरूष नहीं मिलेगा। महापुरूषों में कितने ही महान् मस्तिष्क वाले मिलेंगे, जिनकी प्रतिभा दूर तलक देखने वाली, दूर तलक भेदने वाली हैं। किन्तु हृदयमाधुर्य में इतने बड़े नहीं निकलेंगे। बुद्ध हृदय व बुद्धि दोनों में महान् थे, उनके संपूर्ण

ISBN: 978-93-93166-10-4

व्यक्तित्व को लगभग ढ़ाई हजार वर्षों की परम्पराओं, अपनों और परायों की आस्था के फूलों ने इतना ढक लिया है कि वह कहीं छुप गए से नजर आते हैं, पर इसके बावजूद तनिक ध्यान देने पर भी गर्द लगे जगमग-जगमग करते कोहिनूर की भांति स्पष्टतः चमकने लगते हैं।

उद्देश्य

संसार में मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, तो मनुष्य से निकृष्ट भी कोई नहीं मिलेगा। फिर भी सभी सम्मानपूर्वक जीना चाहते हैं और सभी प्रकार के कष्टों से दूर रहना चाहते हैं। इसके लिए विविध धर्म विविध मार्ग सुझाते हैं, पर सर्वाधिक सरल मार्ग सुझाने वाला बौद्ध धर्म है। इसके प्रर्वतक गौतम बुद्ध ने चार आर्य सत्य बताए थे-

1. संसार दुःख पूर्ण हैं, 2. इन दुःखों के कारण विद्यमान हैं, 3. इन दुःखों से वास्तविक मुक्ति संभव है, 4. दुःखों से मुक्ति का उपाय है। दुःखों से मुक्ति के लिए बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग बताया है - सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि। दुःख का मूल तृष्णा है और तृष्णा की समाप्ति से सुख मिलता है। इसके लिए जीवन में मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए- न तो अधिक आसक्ति हो और न काया को अधिक कष्ट ही पहुंचाया जाए। बौद्ध धर्म अंधविश्वासों एवं बाह्याडम्बरों से मानव को मुक्ति दिलाता है और शान्ति पूर्वक सम्मानित जीवन जीने की प्रेरणा देता है। आज वैश्विक अराजकता के दौर में यह बहुत जरूरी है कि मनुष्य मात्र बौद्ध धर्म की प्रासंगिकता पर पुनर्विचार करें और अपने जीवन को सुखी बनाए। इसी

ISBN: 978-93-93166-10-4

उद्देश्य की पुर्ति हेतु महापंडित राहुल सांकृत्यायन के बौद्ध धर्म सम्बन्धी जीवनानुभवों को इस आलेख में उल्लिखित करने का प्रयास किया गया है।

शोध विधि

इस आलेख में मेरे द्वारा यहाँ प्राथमिक और अप्राथमिक दोनों ही स्रोतों से तथ्य पूर्ण जानकारी प्रस्तुत की गई है। इंटरनेट, सांकृत्यायन की आत्मकथा और उनके द्वारा रचित महात्मा बुद्ध से संबंधित रचनाओं के अध्ययन-मनन के पश्चात् यह शोध-आलेख प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आलेख

हिंन्दी के प्रमुख साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन। बहुआयामी प्रतिभा के धनी, प्रतीष्ठित बहु-भाषाविद। जिनका जन्म 1893 में आजमगढ़ के पंदहा में हुआ, इनका बाल्यकाल का नाम था केदारनाथ पांडेय। राहुल सांकृत्यायन उस दौर के उपज थे जब ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारतीय समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राजनीति सभी संक्रमण कालीन दौर से गुजर रहे थे। वह दौर समाज सुधारकों का था एवं कांग्रेस अभी शैशवावस्था में थी। इन सब से राहुल अप्रभावित न रह सके एवं अपनी जिज्ञासु घुमक्कड़ प्रवृत्ति के चलते घर-बार त्यागकर साधु वेशधारी, सन्यासी से लेकर वेदांती आर्य-समाजी व किसान नेता एवं बौद्ध भिक्षु से लेकर साम्यवादी चिंतक तक का लंबा सफर तय किया। सन् 1930 में श्रीलंका जाकर वह बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए एवं तभी से वे 'दामोदर साधु' से राहुल हो गए और सांकृत्य गोत्र के कारण

ISBN: 978-93-93166-10-4

सांकृत्यायन कहलाये। उनकी अद्भुत तर्कशक्ति और अनुपम ज्ञान भंडार को देखकर काशी के पंडितों ने उन्हें महापंडित की उपाधि दी एवं इस प्रकार वे केदारनाथ पांडे से महापंडित राहुल सांकृत्यायन हो गये। [1] राहुल सांकृत्यायन जीवन के शुरूआती दौर से ही स्वच्छंद प्रकृति के थे, परिवार के माया-मोह से दूर कहीं ज्ञान प्राप्ति की तृष्णा में प्रवृत्त होना, सन्यासी जीवन का मोह, परदुःखकातरता, मानव-कल्याण की भावना इनके स्वभाव का हिस्सा थी। नाना की शिकार कथाओं और नवाजंदा-वाजन्दा के सैर सपाटों ने रंग लाना शुरू किया और जीभ पर था वह बाजिन्दा का सुनहला वाक्य-

"सैर कर दुनिया की गाफिल जिंदगानी फिर कहां ? जिंदगानी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहां ?[2]

इनकी सन्यासी प्रवृत्ति को उभारता एक और कथन - पहले संस्कृत के और वेदांत के ग्रंथों को खूब पढ़ूंगा उसके बाद सन्यासी हो जाऊंगा।[3] और आगे चलकर सन् 1916 तक आते-आते इनका झुकाव बौद्ध धर्म की ओर होता गया। बौद्ध धर्म में दीक्षा लेकर ये राहुल सांकृत्यायन बने। बौद्ध धर्म में लगाव के कारण ही यह पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के सीखने की ओर झुके।[4] ज्ञान पिपासा के कारण इनके मन को ठहराव नहीं था। ज्ञान प्राप्ति की लालसा इन्हें बौद्ध सिद्धांत के द्वार तक ले गई। बौद्ध-दर्शन क्या है इधर ध्यान जाना जरूरी था और पूर्व पक्ष के तौर पर उद्धृत कुछ वाक्यों से मेरी तृप्ति नहीं हो सकती थी।[5] इन पर बुद्ध की शिक्षाओं का व्यापक प्रभाव पड़ा। बुद्ध के जीवन-दर्शन, उनकी वाणी व उनके अनुयायी महान साधकों का दिग्दर्शन और बौद्ध धर्म पर किया गया इनका शोध कार्य हिंदी साहित्य

ISBN: 978-93-93166-10-4

में अग्रणी और युगांतकारी स्वीकार्य हैं। राहुल सांकृत्यायन ने बुद्ध के जीवन दर्शन को स्पष्ट करने हेतु व्यापक अध्ययन मनन किया इन्होंने बौद्ध दर्शन से संबंधित कई ग्रंथो जैसे- बौद्ध दर्शन, बुद्धचर्या, महामानव बुद्ध, विनय पिटक, मज्झिमनिकाय, दीघनिकाय, आदि का प्रणयन किया और जगह-जगह की यात्रा कर, किन्नर देश की ओर, मेरी तिब्बत यात्रा, तिब्बत में सवा वर्ष, चीन की यात्रा, रूस में पच्चीस मास, लहासा की ओर, व घुमक्कड़ शास्त्र आदि प्रमुख यात्रा वृतांतों की रचना की। इन यात्राओं के दौरान कवि ने कई सिद्ध-साहित्यकारों व उनके उत्कृष्ट साहित्य को खोज निकाला। बुद्ध के जीवन के हर पहलू को इन्होंने बखूबी उजागर किया और जन्म से लेकर जीवन के आखिरी क्षण तक का बड़ा ही सार-पूर्ण वर्णन किया। महात्मा बुद्ध के जीवन व दर्शन संबंधी सार पूर्ण बातें राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में निम्न प्रकार है - तरूण सिद्धार्थ को संसार से विरक्त तथा अधिक विचारमग्न देख शुद्धोधन को डर लगा कि कहीं उनका लड़का भी साधु के बहकावे में आकर घर न छोड़ जाए, इसके लिए उसने पड़ोसी कोलिय गण की सुन्दर कन्या भद्रा यशोधरा से विवाह कर दिया। सिद्धार्थ कुछ दिन ठहर गए और इस बीच में उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसे अपने उठते विचार-चंद्र के गहने के लिए राहु समझ उन्होंने राहुल नाम दिया। वृद्ध, रोगी, मृत और प्रवर्जित, चार दृश्यों को देख उनकी संसार से विरक्ति पक्की हो गई और एक रात चुपके से वह घर से निकल भागे। इसके बारे में बुद्ध ने स्वयं चुनार में वत्सराज उदय के पुत्र बोधि राजकुमार से कहा था - राजकुमार बुद्ध होने से पहले मुझे भी होता था सुख में सुख नहीं प्राप्त हो सकता, दुःख में सुख प्राप्त हो सकता है, इसलिए में तरूण बहुत काले केशवाला ही सुन्दर यौवन के साथ प्रथम वयस में माता-

ISBN: 978-93-93166-10-4

पिता को अश्रुमुख छोड़ घर से प्रवर्जित हुआ।[6] बुद्ध ने अपने पिता के खेत पर, जामुन की ठंडी छाया के नीचे ध्यान लगाया, किंतु भोजनाभाव के कारण कृशकाय हो गए और सोचा कि इस अत्यन्त कृशकाया से तो ध्यान-सुख नहीं मिल पाएगा। यह सोच दाल-भात ग्रहण करने लगे इसी कारण उनके साथ रहने वाले पांच भिक्षुओं ने इनसे उदासीन हो इनका त्याग कर दिया, लेकिन फिर बुद्ध ने ज्ञान के मार्ग पर अटल रहकर अनुपम निर्वाण को प्राप्त कर लिया और ज्ञान का प्रथम उपदेश उन्हीं पांच भिक्षुओं को दिया जो उन से उदासीन हो चले गए थे और मध्यम मार्ग अष्टांगिक मार्ग को इन्होंने खोज निकाला। बुद्ध होने के बाद उन्होंने सबसे पहले अपने ज्ञान का अधिकारी उन पांच भिक्षुओं को समझा जो कि अनशन त्यागने के कारण पतित समझ उन्हें छोड़ गए थे। पता लगाकर वह उनके आश्रम ऋषि पतनमृगदाव पहुंचे, बुद्ध का पहला उपदेश उसी शंका को हटाने के लिए था जिसके कारण कि अनशन तोड़ आहार आरंभ करने वाले गौतम को वह छोड़ गए थे, बुद्ध ने कहा- भिक्षुओं इन दो अतियों का सेवन नहीं करना चाहिए -

(1) काम सुख में लिप्त होना, (2) शरीर पीड़ा में लगना।

इन दोनों अतियों को छोड़ मैंने मध्यम मार्ग खोज निकाला है जो कि आंख देने वाला, ज्ञान कराने वाला, शांति देने वाला है। वह मध्यम मार्ग यही आर्य आष्टांगिक मार्ग है, जैसे कि- ठीक दृष्टि, ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक समृति और ठीक समाधि।[7] बुद्ध साम्यवाद के समर्थक थे, समानता के भाव के पक्षधर थे, मानव के दुःखों का कारण इन्होंने तृष्णा को माना और इसी को विवाद की जड़ भी उन्होंने स्वीकार किया। बुद्ध के अनुसार दुःख का

ISBN: 978-93-93166-10-4

हेतु तृष्णा होती है, उसमें भी भोग की तृष्णा। विषयों को जो हमारे प्रिय लगते हैं, उन विषयों के साथ हम उनका संपर्क बनाना चाहते हैं उनका ख्याल दिल में करते हैं, तो वह हमारे तृष्णा को पैदा करता है और हम एक-दूसरे से इस तृष्णा की वजह से इस काम की वजह से हम एक-दूसरे से लड़ते रहते हैं, विवाद होते रहते हैं और हमें दुःख की प्राप्ति होती है दुःख का विनाश करने के लिए वह कहते हैं कि दुःख कर विरोध करो और दुःख के विरोध करने के लिए हमें तृष्णा को मिटाना पड़ेगा। अर्थात् सारी बुराईयों का न करना और अच्छाइयों का संपादन करना, अपने चित्त का संयम करना, यह बुद्ध की शिक्षा है।[8] यहां उन्होंने दुःख और उसकी जड़ को समाज में न ख्याल कर, व्यक्ति में देखने की कोशिश की। भोग की तृष्णा के लिए राजाओं, क्षत्रियों, ब्राह्मणों वैश्यों, सारी दुनियाँ को झगड़ते, मरते-मारते देख भी उस तृष्णा को हटाने की कोशिश की। उनके मतानुसार मानो, कांटों से बचने के लिए सारी पृथ्वी को तो नहीं ढका जा सकता है, हां अपने पैरों को चमड़े से ढांक कर कांटों से बचा जा सकता है। वह समय भी ऐसा नहीं था, कि बुद्ध जैसे प्रयोगवादी दार्शनिक, सामाजिक पापों को सामाजिक चिकित्सा से दूर करने की कोशिश करते। तो भी वैयक्तिक संपत्ति की बुराइयों को वह जानते थे, इसीलिए जहां तक उनके अपने भिक्षु-संघ का संबंध था, उन्होंने उसे हटाकर भोग में पूर्ण साम्यवाद स्थापित करना चाहा।[9] बुद्ध की शिक्षाओं को देखा जाए तो वह क्षणभंगुरता को मानता है, वस्तु को पल-पल परिवर्तित स्वीकार करता है। इस मत को राहुल सांकृत्यायन के अनुसार देखा जाए तो दो सदियों तक के भारतीय दार्शनिक दिमागों के जबरदस्त प्रयास का अंतिम फल हमें बुद्ध के दर्शन क्षणिक अनात्मवाद के रूप में मिलता है।[10] बुद्ध प्रतित्यसमुत्पाद को

ISBN: 978-93-93166-10-4

स्वीकार करते हुए अन्तः और बाह्य है जगत की सभी वस्तुओं को बिना अपवाद के नाशवान और अनित्य परिवर्तनशील मानता है। यह मानव समाज को टुकड़े-टुकड़े होते न देख कर एकजुट देखने का जिज्ञासु था। समाज में कौन अच्छा है? कौन नीचा है? कौन किस वर्ण का है? इससे बुद्ध को कोई लेना देना नहीं था, वह सामाजिक साम्य के पक्षधर रहे। राहुल सांकृत्यायन बौद्ध धर्म में सामाजिक व्यवस्था के बारे में चित्रित करते हुए कहते हैं, इस प्रकार बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद को देखने पर जहां तत्काल प्रभु-वर्ग भयभीत हो उठता वहां प्रतिसंधि और कर्म का सिद्धांत उन्हें बिल्कुल निश्चित कर देता था यही वजह थी, जो बुद्ध के झंडे के नीचे हम बड़े-बड़े राजाओं, सम्राटों, सेठ साहूकारों को आते देखते थे और भारत से बाहर लंका, चीन, जापान, तिब्बत में तो उनके धर्म को फैलाने राजा सबसे पहिले आगे बढ़े। वह समझते थे कि यह धर्म सामाजिक विद्रोह के लिए नहीं बल्कि सामाजिक स्थिति को स्थापित रखने के लिए बहुत सहायक साबित होगा। जातियों, देशों की सीमाओं को तोड़कर बुद्ध के विचारों ने राज्य विस्तार करने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपेण भारी मद्द की। समाज में आर्थिक विषमता को अक्षुण्ण रखते ही बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था को, जातिय ऊँच-नीच के भाव को हटाना चाहा था, जिससे वास्तविक विषमता तो नहीं हटी, किन्तु निम्न वर्ण का सद्भाव बौद्ध धर्म की ओर बढ़ गया।[11] बौद्ध दर्शन क्षणिकवाद को महत्व देता है। उनका मत था कि कोई भी वस्तु एक क्षण से अधिक नहीं ठहरती, जगत, समाज, मनुष्य सभी को उसने क्षण-क्षण परिवर्तनशील घोषित किया और कभी न लौटने वाले 'ते हि नो दिवसा गताः की परवाह छोड़कर परिवर्तन के अनुसार अपने व्यवहार अपने समाज के परिवर्तन के लिए हर वक्त तैयार रहने की

ISBN: 978-93-93166-10-4

शिक्षा देता था। बुद्ध ने अपने बड़े से बड़े दार्शनिक विचार को भी बेड़े के समान सिर्फ उससे फायदा उठाने के लिए कहा था उसे समाज के बाद भी ढ़ोने की निंदा की थी।[12] बुद्ध के समय समाज में बहुदेववाद प्रथा थी, समाज अलग-अलग देवताओं के प्रति आस्था रखता था और उसी के अनुरूप पूजा, अनुष्ठान इत्यादि भिन्न-भिन्न रूप में प्रचलित थे। बुद्ध ने समाज में आस्था का यह रूप देखकर अपनी असहमति प्रकट की व घोषित किया कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है और जो पृथ्वी पर अवतरित होता है वह एक सामान्य मनुष्य की भांति ही होता है उसमें अवतार अथवा देवत्व की भावना कपोल-कल्पना मात्र है और अंधविश्वास को बढ़ावा देने वाली है, अतः इस प्रकार के बाह्याडंबर से समाज को मुक्त करने की दृष्टि से बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश दिए। जो लोग बुद्ध की शिक्षाओं और उनके ग्रंथो को भली-भांति मनन नहीं करते और अपने-अपने मतानुसार उनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, उनके लिए कोई भला क्या कहे। बुद्ध अनीश्वरवादी थे और बौद्ध धर्म में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं, फिर भी लोग पता नहीं क्यों उन्हें ईश्वर भक्त साबित करने का प्रयत्न करते? हजारों अविश्वसनीय चीजों पर विश्वास करने वाले अपने समय के अंध श्रद्धालुओं को बुद्ध बतलाना चाहते थे कि तुम्हारा ईश्वर नित्य ध्रुव वगैरह नहीं है, ना वह सृष्टि को बनाता बिगाड़ता है, वह भी दूसरे प्राणियों की भांति जन्मने-मरने वाला है ऐसे अनगिनत देवताओं में सिर्फ एक देवता मात्र है।[13]

बुद्ध की अहिंसा संबंधी विचारों को देखा परखा जाए तो इसमें भी वह अपनी एक अलग ही मंशा रखते थे। उनका मानना था कि जो हिंसा नजर आती है वह हिंसा नहीं होती। बुद्ध के मुताबिक हिंसा हमारे जीवन

ISBN: 978-93-93166-10-4

का अभिन्न अंग है, सोच विचार किया जाए तो हर क्षण हम हिंसा करते हैं। बुद्ध ने किसी के प्रति वैरभाव से की जाने वाली हिंसा को अनुचित बताया है अर्थात् जीवन में सभी के प्रति आत्मवत् सम्मान पूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा दी है राहुल सांकृत्यायन ने कहा है बुद्ध अहिंसा के परम समर्थक थे और प्राणी मात्र के प्रति सदयहृदय थे, क्योंकि वह मनुष्य जीवन की वास्तविकता को अच्छी तरह समझते थे। मनुष्य से वह उतनी ही आशा रखते थे, जितनी कि उसकी शक्ति है। हिंसा की जड़ में बैर काम करता है। इसलिए बुद्ध ने कहा है कि:-

न ही वेरेन वेरानि सम्मन्तीय कुदाचनं।

अवेरेन सम्मंति एस धर्मों सन्न्तनों।।

वैर से वैर कभी शांत नहीं होता अवैर से ही शांत होता है, यह सनातन धर्म है।[14] अच्छी तरह देखने पर यह मालूम होगा कि मांसाहार के प्रति बुद्ध का दृष्टिकोण ज्यादा बुद्धि पूर्वक है यदि हर एक आहार के प्राप्त करने के पीछे होने वाली पीड़ा और हिंसा का विचार किया जाए तो कोई भी आहार शुद्ध नहीं मिल सकता। अन्न को जो किसान पैदा करते हैं, और कठिनाईयों के कारण अपने बच्चों को भूखा रखकर उसे बेच देते हैं, ऐसे अनाज के एक-एक दाने में भी हिंसा लगी हुई है। गुड. तथा दूसरे बहुत से खाद्य, कई प्राणियों के प्राण-वियोग के साथ बनते हैं। खेतों में हल जोतते वक्त न जाने कितने आंखों से देखे जाने वाले प्राणी मारे जाते हैं, धान के खेतों में तो और भी अधिक, क्योंकि बरसात के कारण हजारों केचुए और दूसरे जंतु उस वक्त पैदा होकर घूमते रहते हैं, फसल नुकसान करने वाले प्राणियों-टिड्डयों और

ISBN: 978-93-93166-10-4

दूसरों का संहार हिंसा है। और हिंसा द्वारा प्राप्त अनाज उससे अछूता नहीं रह सकता। आजकल फसल की रक्षा या स्वास्थ्य रक्षा के लिए जितनी कृमि नाशक औषधों का प्रयोग और छिड़काव किया जाता है, वह अरबों प्राणियों की हिंसा का कारण बनता है। यदि इन सब का ख्याल किया जाए और उस हिंसा से बचने का प्रयत्न करें तो हम किसी खाद्य को ग्रहण नहीं कर सकते।[15] उनका मत था कि जो व्यक्ति जिस परिवेश में रहता है, वहां उदरपूर्ति हेतु उसे जो भी खाने को मिलता है वह चाहे अन्न हो या वन्य या समुद्री जीव हो जीवन-निर्वाह हेतु भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप ही मानव जीवन घोषित होता है। बुद्ध के राजनीतिक विचारों की तरफ नजर डाली जाए तो बुद्ध गणतंत्र के पक्षधर थे। इसी के आधार पर ही उन्होंने जहाँ भी अपने संघ बनाएं उसमें गणतंत्र का निर्वाह वे करते रहे।। बुद्ध राजतंत्र के नहीं, बल्कि गणराज्य के पक्षपाती थे, उसी के आदर्श पर उन्होंने अपने संघ का निर्माण किया। संघ की सारी कार्यवाही वोट - ग्रहण और दूसरी बात वही थीं, जिनके अनुसार वैशाली और दूसरे गणों के लोग अपना कार्य चलाते थे।[16]

राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार बुद्ध को चिकित्सा शास्त्र का भी ज्ञान था जिसका न केवल उनके काल में बल्कि उनके परवर्ती कालों में भी कई देशों ने पर्याप्त लाभ उठाया। रोगी की सेवा के साथ कितनी ही दवाईयों के उपयोग की बात भी बुद्ध ने बतलाई। इसी कारण उन्हें भैषज्य गुरू (दवाओं के गुरू) कहा जाने लगा। भैषज्य गुरू से जीवन में जितने रोगियों ने लाभ उठाया उन से हजारों गुना अधिक उनके निर्वाण के बाद लाभान्वित हुए। अशोक ने पशु-चिकित्सा, मनुष्य-चिकित्सा की

ISBN: 978-93-93166-10-4

व्यवस्था अपने देश में ही नहीं, सुदूर ग्रीक राज्यों में भी की। कम्बुज, चीन आदि देशों में हजारों धर्मार्थ अस्पताल और आतुरालय खुले। बुद्ध दुःख से टूक-टूक होते हृदयों का तमाशा नहीं देखते थे। वह उसे अनुभव करते से हटाने की कोशिश करते थे।[17] कहा जाता है कि सत्य बहुत कड़वा होता है और कटु सत्य कहने में सब झिझकते भी हैं, किन्तु सांकृत्यायन के अनुसार इस कटु सत्य को कहना बुद्ध अवश्यंभावी मानते थे।

'सत्यम ब्रूयात प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात सत्यम प्रियम' (सच बोलें, लेकिन प्रिय बोलें, अप्रिय सत्य को न बोलें)। यदि सभी लोग अप्रिय सत्य को बोलने से इन्कार कर दे तो भूलों को रास्ता नहीं मिल सकता। बुद्ध आवश्यकता पड़ने पर अप्रिय सत्य को बोले बिना नहीं रहते थे।[18] सांकृत्यायन के मतानुसार बुद्ध जाति-पाँति के बंधनों को सिरे से नकारने वाले थे, वह समता के प्रचारक थे, ढ़ाई हजार वर्ष पहले उन्होंने अपने शक्तिशाली आवाज जात-पात के खिलाफ उठाई, यदि उसका आधार संपत्ति नहीं होता तो इसमें शक नहीं वह जड़-मूल से खत्म हो गई होती। तो भी बुद्ध की वाणी ने जात-पात की कठोरता को इतना शिथिल कर दिया कि पीछे राजाओं और ब्राह्मणों ने कुलीन प्रथा चलाकर उसे पुनः प्रतिष्ठित करना चाहा।[19] बुद्ध चाहते थे मनुष्य किसी का पिछलग्गू न बनें, स्वतंत्र चिंतन वादी बने, अपनी राहें स्वयं तय करें। बुद्ध स्वतंत्र चिंतक थे चाहते थे दूसरे भी भेड़ न बने और स्वयं अपने रास्ते का निश्चय करें। इसी कारण बुद्ध दर्शन ने पुस्तकों और आप्त वाक्यों को प्रमाण नहीं माना। बौद्ध केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं। अनुमान को भी उतने ही अंश तक जितना कि वह प्रत्यक्ष पर

ISBN: 978-93-93166-10-4

अवलंबित है।[20] राहुल सांकृत्यायन के अनुसार बुद्ध अपनी शिक्षाओं का मुख्य ध्येय लोभ-लालच से दूर रहकर, मनी विकारों का त्याग कर, मानव-कल्याण हेतु कार्य करते हुए चित्त मुक्ति बताते हैं। अपनी शिक्षा का क्या मुख्य प्रयोजन है, इसे बुद्ध ने इस तरह बतलाया है, भिक्षुओं यह ब्रहमचर्य (भिक्षु का जीवन), न लाभ-सत्कार प्रशंसा के लिए है न शील की प्राप्ति के लिये, न समाधि की प्राप्ति के लिए, न ज्ञान दर्शन के लिए है। जो अटूट चित्त से मुक्ति है, उसी के लिए यह ब्रहमचर्य है, यही सार है यही उसका अंत है।[21] बुद्ध के जीवन से संबंधित सभी पहलुओं को साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन ने बखूबी उजागर किया, उन पर बुद्ध के विचारों का गहरे तक असर हुआ, इसका पता हमें बुद्ध के जीवन पर उनके द्वारा किए गए शोध कार्य से भली भाँति भाषित हो जाता है। बुद्ध के अंतिम वाक्य को लेते हुए वे कहते हैं बुद्ध का अंतिम वाक्य था संस्कार (कृत वस्तुएं) नाशवान हैं, आलस न कर जीवन के लक्ष्य को संपादन करो। चीनी पिटक के सूत्र का अनुवाद भी ऐसा ही है -

'व्यधर्माः संस्काराः, अप्रमादेन संपादयेथाः।'

अपने इस अंतिम वाक्य में उन्होंने दो बातों पर जोर दिया। एक में उनका मुख्य दर्शन है' सभी वस्तुएं परिवर्तनशील है', अर्थात् क्षणिकवाद। दूसरे में अपने लक्ष्य की प्राप्ति में आलस न करने की सलाह है।[22]

निष्कर्ष

बौद्ध धर्म की जन्मस्थली रहा है हमारा भारत वर्ष। इसके

ISBN: 978-93-93166-10-4

संस्थापक गौतम बुद्ध ने 45 वर्षों तक कोसी कुरूक्षेत्र से लेकर हिमाचल विंध्याचल क्षेत्रों में विचरते हुए अपने सिद्धांतों का अपनी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया। बौद्ध धर्म के मानने वाले चिरकाल तक धुरन्धर महासम्राटों से लेकर साधारण जन तक सम्पूर्ण भारत में प्रचुरता से फैले हुए थे। भारत का शायद ही कोई भाग बौद्ध भिक्षुओं के मठों से और इसके सिद्धान्तों से रिक्त रहा हो। इसके विचारक और दार्शनिक सहस्त्रों वर्षों तक अपनी शिक्षाओं से देश के महान् विचारकों को प्रभावित करते रहे और मानव-कल्याण हेतु निरन्तर कार्य करते रहे। निष्कर्षतः बुद्ध ने अपने समय की सामाजिक जड़ता को तोड़ने का उपक्रम किया, उन्होंने बहुदेववाद जैसी अंधश्रद्धा के खन्डन हेतु अनीशवरवादी दर्शन का प्रचार किया और राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्रात्मक व्यवस्था का समर्थन किया। स्वस्थ समाज हेतु बुद्ध एवं उनके अनुयायियों ने चिकित्सकीय अनुसंधान किए और रोगों के उपचार हेतु निरन्तर संलग्न रहे। उनका सामाजिक समरसता हेतु किया गया अवदान महत्वपूर्ण हैं। अहिंसा-दर्शन में भी उनके विचार युक्तियुक्त है। किसी से अनावश्यक वैरभाव रखकर हिंसा करने को बुद्ध उचित नहीं ठहराते, बुद्ध एक आदर्श समाज की सुन्दर रचना का स्वप्न देखते थे और उसे पूर्ण करने में ही उन्होंने अपना र्स्वस्व समाज को समर्पित कर दिया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. विकीपीडिया - राहुल सांकृत्यायन
2. पृष्ठ 51, मेरी जीवन यात्र - राहुल सांकृत्यायन
3. वही, पृष्ठ संख्या - 83
4. विकीपीडिया - राहुल सांकृत्यायन

ISBN: 978-93-93166-10-4

5. पृष्ठ संख्या - 310, मेरी जीवन यात्रा - राहुल सांकृत्यायन
6. पृष्ठ संख्या - 2, बौद्ध दर्शन - राहुल सांकृत्यायन
7. पृष्ठ संख्या - 4, महामानव बुद्ध-राहुल सांकृत्यायन
8. वहीं पृष्ठ संख्या - 8
9. पृष्ठ संख्या - 12, बौद्ध दर्शन - राहुल सांकृत्यायन
10. वही, पृष्ठ संख्या - 1
11. वही, पृष्ठ संख्या - 40-41
12. वही, पृष्ठ संख्या - 39
13. वही, पृष्ठ संख्या - 27
14. पृष्ठ संख्या - 86, महामानव बुद्ध - राहुल सांकृत्यायन
15. वही, पृष्ठ संख्या - 83
16. वही, पृष्ठ संख्या - 19
17. वही, पृष्ठ संख्या - 35-36
18. वही, पृष्ठ संख्या - 42
19. वही, पृष्ठ संख्या - 38
20. वही, पृष्ठ संख्या - 46
21. वही, पृष्ठ संख्या - 6
22. वही, पृष्ठ संख्या - 29

भगवान गौतम बुद्ध एवं भारतीय समाज (बौद्ध धर्म के उदय से 12वी शताब्दी तक)
ISBN: 978-93-93166-10-4

Release from Conditioned Existence – The Buddha's Denial of Gods and The Acceptance of Brahmā – The Love of The Self

For verification of this chapter, please visit on
http://www.socialresearchfoundation.com/books.php#8

Deepa Chaturvedi
Associate Professor
Higher Education
Government Arts College
Kota Rajasthan, India

Chapter ID: 16534

This is an open-access book section/chapter distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

No God, no Brahmā can be found, Creator of Saṃsāra's round, Empty phenomena roll on, Subject to cause and condition. Visuddhimagga, XIX.

Buddhism took root in India when the Brahminical polytheistic tendencies were spreading throughout the Gangetic plain and in places becoming dominant. Marasinghe's analysis of the conditions of those times seems to be pertinent which says that these tendencies were in a way becoming very popular, with the tribal India,

ISBN: 978-93-93166-10-4

very uniquely preserving their own gods, major and minor and also assimilating the tribal gods unto their fold. There is historical evidence enough that prove that polytheism was a way of life with the people of those times, when Jainism and Buddhism took birth in India (Marasinghe, 1974).

Modern scholars are almost unanimously of the view that Buddhism can be described as a Non-theistic religion as in this tradition a belief in an omniscient, omnipotent creator or God is deemed to be absolutely untenable and unnecessary. Scholars like H. von Glasenapp (1970) and Nyanaponika (1981) have argued in favor of this non-theistic tendency of Buddhism saying that the origins of the universe, the moral order, man's destiny and salvation can be satisfactorily explained without the need to introduce the idea of a supreme being that is responsible for them all—something which the early Buddhism has capably handled.

But before we proceed any further, it would only be pertinent to say that those beings, whose generic name of devā is generally taken to mean ' Shining Ones' make appearances so often in the Pali texts that there is every justification for an enquiry into their nature and the precise place they occupy in the early texts of Buddhism.

ISBN: 978-93-93166-10-4

Here a distinction needs to be drawn between the teachings attributed to the Buddha in the Pali Canon or the Āgamas (Early Buddhism), which does not under any condition affirm the presence of a Creator God (but the texts are fraught with the presence of devās or gods- a confusion which is the matter of analysis of this essay) as it is done later in some Mahāyāna Sutras and Tantras where acceptance is given to an apparent Ultimate Ground of all things- the omniscient and transcendental Reality of the Awakened mind or the Infinite sphere of the 'Buddha-Nature' (Buddha-dhātu or Tathāgatagarbha) as is evident from the study of Srimāla Sutra or the Mahayana Mahāparinibbāṇa Sutta. In this essay, the exploration of the presence of gods will be limited to the 'Early Buddhist Tradition' of the Pali Canon as is commonly agreed upon by the scholars.

But even while dealing with the texts of the Pali Canon which negate the presence of an Absolute presence, one is surprised to see innumerable suttas dedicated to the description of the Buddha's meetings with gods or devās or His solving the riddle of their (devās) presence. If Early Buddhism is generally regarded as a religious philosophy without an Absolute Creator God who created the universe

ISBN: 978-93-93166-10-4

ex nihilo and to whom any veneration or obeisance is due, then how does one explain the presence of gods and heavens in the Pali texts.

Now this dilemma does not lead us to the simplistic argument of whether Buddhism believes in devās or not but to more complicated psycho-scientific issues with which the contemporary science is grappling too. We often question whether we have any means of relating our subjective experiences and knowledge of the external world to any objective reality existing outside our consciousness and world of perception? Can we understand the real nature of the world by sensory perception and intellect and are these sufficient tools of knowledge?

Are we in a position to avoid the evidence collected from umpteen sources which bear testimony to the presence of certain beings who belong to a different order of nature such as nature spirits, angels, djinns, fairies etc.? Are we in a position to write off the mystical or extra-sensory experiences felt by people over the ages? Can we just explain such experiences as falling outside the areas of the particular space time continuum in which our consciousness normally operates and therefore are these experiences not worthy of any further explanation? While

ISBN: 978-93-93166-10-4

answering the questions posed by religious cosmology are we not tempted to avoid the queries as to the whereabouts of beings and heavens as our studies incessantly reveal that even if the concepts of space and time can be reduced to one, there are no apparent, clear or absolute points of reference, where the exact simultaneity of events could be determined. Are all these questions not the result of our single plane of experience being considered by us as the only possible, final one when all inferential logic goes against this very assumption ?Are we not aware of two discrete and seemingly opposed and incompatible worlds namely the one of our own subjective experiences and the second of the objective world of science—where a meeting point has been evading human history for a couple of thousands of years and where we find ease in being comfortably poised in our own subjective heaven? And the most important question of all- - is this construction of subjective-objective duality itself void of any reality and can this reality be discerned through any cognitive, empirical or meditative process? Can we establish the presence of the worlds beyond the sphere of our consciousness?

A deeper delving into these questions does lead us a little closer to understanding of the Buddha's teachings of

ISBN: 978-93-93166-10-4

release from conditioned existence and explain to us why the Buddha avoided getting entangled into questions regarding the presence of gods or an interpretation of phenomena. And in order to ascertain the views of the Buddha on the presence of devās, it will not be out of context to begin with a description of devās in the different suttas of the Pali canon.

To begin with, in these texts, the Buddha himself is addressed as Atideva, Devātideva, Ādhideva. The Pali texts do talk of Gods and that too not only of Ṛgvedic or the Brahminical tradition, but of their own forging also. It is difficult to say how many gods were accepted from the Brahminical tradition directly and how many as Marasinghe (1974) summarizes it underwent a 'Buddhistification'. But the Pali texts are in fact full of them. They mention one hundred and seventy three devās, thirty six named and ninety nine unnamed who visited the Buddha for the clarification of their doubts. There are twenty nine suttas in the Ànguttara Nikāya which refer to gods. Out of these eighteen suttas are the records of the visits of individual or of groups of devās, to the Buddha. Nine suttas contain accounts of close associations of gods with various disciples. Two suttas contain accounts of Moggallāna's visit

ISBN: 978-93-93166-10-4

to the realm of the gods. The Mahāgovinda sutta seems to support the view that the higher the realm of heavenly existence, the subtler is the composition of the beings therein. The Khuddaka Nikāya also deals with the tripartite division of the Sammuti, Upapatti, and the Visuddhi devās.

The Samutti devās ("by convention"), are human beings of high worldly status; kings, ministers and the like. The Upāpatti devās ("through rebirth"), are beings living in the deva lokas, or higher spheres. The Visuddhi ("by their purity") are the greatest human beings who have attained the final degree of self-liberation, and so are known as devās by purification who are yet alive. These are Supreme Buddhas, Silent Buddhas (Pacceka Buddhas) and Arahats. Not only this, there is evidence which proves the Buddha himself agrees to the presence of devās.

In a question by king Pasenadi, the Buddha replies "Are you unaware of the existence of such devās as Cātummahārājika devās and the Tāvatiṃsa devās, that you ask this question?" (PS III, 359, 22). The same texts tells us that in a conversation with Bhāradvāja, the Buddha says, "It is commonly agreed in the world, Bhāradvāja, that there are devās". There is a confusing reference in the Saṅgārava sutta (M II 209-13), where the Buddha evades

ISBN: 978-93-93166-10-4

the Brahman Saṅgārava's question about the presence of devās. The interesting aspect being that the Brahman asked the question immediately after the Buddha's statement that devās had approached him and shown great concern about his weak condition during his pre-enlightenment ascetic stage. Now the purpose of the brahmana's question can only be to ascertain the Buddha's view on the eternal reality and actual presence of devās although the story told by him necessarily implies that he admitted some sort of existence for them. According to Saṃyutta Nikāya, we come to know that king Pasenadi was preparing an elaborate sacrifice to propitiate gods. Certainly they were not the gods described in the Buddhist texts as these gods are neither the objects for the offering of sacrifice nor prayer.

We find references to Sakka, the king of devās, who had a longer life span compared to the other devās. When Sakka dies, as he is finite his place is taken by another one immediately. The texts quote it as an evidence of Mandhatar's eminence and greatness that he outlived thirty sakkas, while the texts also refer to those individuals who were born as Sakka a number of times. Even Buddhaghosa relates a story that a Sakka was reborn immediately as he

ISBN: 978-93-93166-10-4

died listening to a discourse of the Buddha, to continue hearing his sermons.

The canon speaks of a vast number of gods and spirits who assemble when the Buddha was on his death- bed: “In great numbers, Ānanda, are the gods of the ten world-systems assembled together to behold the Tathāgata (Perfected one). For twelve leagues…. there is no spot in size even as the pricking of the point of the tip of a hair which is not pervaded by powerful spirits”. Similarly in the canon elsewhere, vast numbers of gods or other- than-this-worldly forms of appearance are described by Masson (1992).

But these gods were not necessarily good. An intriguing example here is the case of Māra, the Tempter, who figured so prominently in the life of the Buddha from the time of his Enlightenment until the final passing away. Because of his sensual nature and his intense ill will to prevent and obstruct other beings from gaining their release from saṃsāra he is known in Buddhism as Māra and Namuci, the personification of suffering and death. The Buddha invariably refers to him as the Evil one, as sensuality in Buddhism is the greatest cause of bondage. In some Buddhist texts Māra is the name given to a subdivision of

ISBN: 978-93-93166-10-4

devās belonging to the Yama realm.

Besides the reference to gods there are references to thirty one abodes where devās and other beings reside. These could be put in three categories of existence in saṃsāra, corresponding to three types of consciousness which are the result of the past kamma. The three categories are: the sense- desire sphere (kāma loka), the fine-material sphere (rūpa loka) and the immaterial, formless sphere (arūpa loka). Alligned with the sense-desire sphere (kāma loka) are the sub-human worlds which include animals. An understanding a nature of these celestial worlds (deva loka) and their significant position is vital to the understanding of the position of gods in the Pali canon. A brief study of the buddhist cosmological system is thus imperative. The thirty one abodes have a nature of their own, in which beings of a particular nature reside. The nature of beings and the abode they dwell in is directly proportional to their kammic life i.e. their stage in the Buddhist spiritual hierarchy.

The lowest in the rung is the sub human worlds which include realms of inferno or hell, world of demons, unhappy spirits and the animal world. These beings are characterized by unwholesome kamma.

ISBN: 978-93-93166-10-4

Above this is the sense-desire or the kāma loka which includes the human world, realm of the Four Great Kings, realm of the thirty three devās, Yama devās, devās enjoying pleasures, devās enjoying their own creations or devās enjoying or utilizing the creations of others. On the kammic chart their deeds fall under the category of mixed kamma, predominantly good and very good kamma in the field of worldly, material activity. These are the world of devās of the sense –desire sphere. Superior to this is the Fine material sphere, Rūpa loka, which includes retinue of Brahmā, ministers of Brahmā, world of Great Brahmās, Brahmās of minor luster, Brahmās of infinite luster, world of radiant Brahmās, Brahmās of minor aura, infinite aura, steady aura, greatly rewarded Brahmās, sensation-less Brahmās designated as Lower Brahmā worlds. Then, come immobile Brahmās, serene Brahmās, beautiful Brahmās, clear-sighted Brahmās and lastly supreme Brahmās designated as Pure Brahmā worlds inhabited by non returners and Arahants. On the spiritual scale their experience entails weak, moderate and full experience of the first, the second, and the third jhāna respectively and the weak, moderate experience of the fourth jhāna. From the immobile Brahmās to the Supreme Brahmās which include in between them serene, beautiful and clear sighted

ISBN: 978-93-93166-10-4

Brahmās are the ones who have experienced the attainment of the fruit of non-returning (Anāgāmi-phala) with full experience of the fourth jhāna.

The most superior is the Immaterial sphere or the Arūpa loka which includes sphere of the infinity of space, sphere of the infinity of consciousness, sphere of the knowledge of nothingness and the sphere of neither-perception-nor-non-perception designated as the Brahmā worlds of disembodied consciousness (Immaterial sphere). The spiritual achievement at this stage includes the experience of the four Arūpāyatana jhānas or the formless sphere absorptions. These are beings having consciousness without material body. The Buddha accepted the existence of the layers of hells beneath, of the world, and of the heavens above-and he accepted all of them as peopled by the forms of appearance which are appropriate to them—for example, Māras and Asurās in the hells below, devās and the Brahmās in the heavens above. So the assemblies of the thirty three Vedic gods, of the Māras and of the Brahmās are accepted in DN.ii.109 as being as real as the assemblies of nobles, brahmins, householders and wanderers.

Now the important thing to note about this classification

ISBN: 978-93-93166-10-4

is that their boundaries or limits are absolutely negotiable and communicable. The world of human beings and animals is physically the same world, and is aligned to the sense-desire sphere. Below it , but still in the same dimensional category are spheres of beings in states of far more pronounced degradation, while above it are realms of the sense-desire devās and as the boundaries are not sharp, distinct and impermeable, the kammic angle becomes all the more important and conspicuous as our deeds or for that matter the Buddhist concept of deedlessness becomes instrumental in getting us a place in any of these categories and our promotion or demotion in this spiritual hierarchy is totally dependent on them.

This detailing of the Buddhist view of devās and their relation to Buddhist cosmology is enough to convince us that Early Buddhism had a belief in the presence of the devās- but what kind of devās were they- this is a matter of further probe. The question now arises as to how does one define devās or gods. They surely were not the gods of the then prevalent Brahminic tradition, who luxuriating dwelt in unimaginable opulence and were above any laws of causality, kamma and who were beyond the touch of death as eternality was their essence and they in a way

ISBN: 978-93-93166-10-4

subsumed time and space- a position which was absolutely denied to the ordinary men. According to K.R. Norman (1977: 1), the real problem of Buddhism regarding devās was not in accommodating them into the Buddhist Cosmology but in fitting the eternal gods of the Ṛgveda into the system of saṃsāra. But this does not seem to be a plausible view as the gods of the brahminic tradition were immortal beings enjoying incomparable bliss in celestial abodes, enjoying the attributes of omniscience, omnipotence and omnipresence—and the most important of all they were above the effects of kamma- i.e. their lives were absolutely devoid of any bondage to the karmic effect as stated above whereas Buddhist gods were so bound. The Buddha made it clear that devās like all other mortal beings of the saṃsāra were subject to death and rebirth. As super or superior men devās had a longer life span than men whereas devās of the Brahminical tradition were immortal and devoid of the concepts of birth and death. Their existence is both timeless and temporal.

Here M.M.J. Marasinghe (1974:113) therefore asserts and rightly so, that from the standpoint of the Pali canon, it was not Buddhism that changed in order to welcome the gods through the admittance of the gods is a fact. But once

ISBN: 978-93-93166-10-4

they were admitted, they no longer retained anything more than the mere outer shells of the original gods, as they have been completely transformed in their character, status, and relevance in regard to the Buddhist tradition. Marasinghe furthers his argument by saying that “Every single episode of them in the Nikāya texts is an essential item which contributed towards the final accomplishment of their metamorphosis” (1974: 113). Norman further argues that when Buddhist cosmology promulgated the existence of many world systems beside the one in which we live, then as a matter of course since devās were of no importance, each world system was provided with its full complement of devās. Both these views, point to the sheer insignificance of the gods in the Pali canon.

Ascertaining the importance of gods in the Pali canon is not a matter of much conjecture. The Buddha, it seems accepted their presence to keep up to the moods of the times he preached in but denuding them of all their rights, privileges, magnificence and above all their vital role in the cosmic design of the world viz-a-viz the human lot, he in a way denied their existence, though very subtly. This could be seen as a balancing act between absolute acceptance

ISBN: 978-93-93166-10-4

and complete denial. It is well imaginable how important could be a god who was almost reduced to a level of a bhikkhu or the one who had to seek spiritual guidance from an enlightened one? The belief in gods could be attributed to the later stage as in the Mahāyana and Tantric Buddhism, there is more open-ness to discourse upon metaphysical matters than is found in the Pali scriptures.

One is here forced to think that the Buddha was personally against the possible existence of any devās—as in the Aggañña sutta (Dīgha Nikāya 27), the Buddha explains how theistic religion originated as a result of an error—the error being present in devās of the sense-desire sphere who are not enlightened personalities and are deeply immersed in the delusion of their godship. Not only this, this error has arisen due to the delusion of the brahmās of the higher spheres too, for the Dīgha Nikaya tells us that Mahā Brahmā imagined himself to be Almighty Brahmā, the Most High, the Invincible One, the Omniscient one, the Ruler, the Lord, the Creator, the Maker, the Perfect One, the Preserver, Controller and Father of all that was and will be. Even when he realized that he was mistaken he continued to maintain the deception before the minor

ISBN: 978-93-93166-10-4

Brahmās of his retinue (abodes 12-14).

Similarly, in the Titha Sutta A N 3.61, the Buddha clearly states that “reliance and belief” in creation by a supreme being leads to lack of effort and inaction. The Buddha tells his monks who believe that whatever happens in this world is caused by a supreme being’s act of creation—“when one falls back on creation by a supreme being as being essential, monks, there is no desire, no effort (at the thought), ‘This should be done. This should not be done’. When one can’t pin down as a truth or reality what should and should not be done, one dwells bewildered and unprotected.”

The concept of brahmins guiding the people to achieve oneness with the divine is ridiculed by the Buddha in the Dīgha Nikaya, no.13, Tevijja Sutta as “foolish talk”, as “ridiculous, mere words, a vain and empty thing”. The view that the frequent appearance of the brahminical deities as disciples of the Buddha in the canonical literature was aimed at emphasizing the falsity of the brahminical belief in the power and potentiality of gods also seems more than plausible.

Even if one were to take the Buddhist philosophy into

ISBN: 978-93-93166-10-4

consideration, the concept of the universe and the laws of cause and effect that govern it leave no scope for the idea of a supreme deity in the role of creator or ruler. As the Buddhist causal theory developed, it did not seem necessary for it to deny the existence of a Creator-God, the theory almost automatically excluded the belief in a God-head.

In Buddhist thought devās are in no way necessary to Buddhist philosophy. Everything that Buddhism asserts concerning the nature of reality can be stated with equal truth and force without reference to devās or any other class of non human beings. The Buddhist philosophy is a consummate, self-sustaining and self-supporting system, requiring no intervention of supernatural or supra-normal agencies, and not capable of being affected by the presence or absence of beings of a non-human transcendental order.

On the psychological dimension also where Huston Smith in his book, “The World Religions” points out very appropriately that unlike theistic religions which begin with the notions of god and the creation of the universe, Buddhism begins with the human condition as enumerated in the Four Noble Truths. Buddhism endorses the view that

ISBN: 978-93-93166-10-4

the ultimate foundation or basis of the universe is the mind, which does not require a god or gods, or any external agency to create that mind. The processes of evolving (saṃvatta) and devolving (vivatta) universe are carried on by the mental activities of the sentient beings (the common human beings as contrasted to a super power of the theistic religions) that are a part of it. It is this mind force of a human, not that of any eternal or transcendent god, that cause the physical world to materialize and go through the stages of growth, decay and dissolution.

Therefore Buddhism lays such emphasis on the immense importance and significance of man- man is the most significant of all beings-man has even more importance and vital role than the Gods as according to the Buddha the road to Nibbāna is open to all and therefore all have the right to godship or Brahmā-ship. And as to answer as to how this is explained-the answer is because the gods are merely enjoying temporarily the results of good actions in the past, but man is the master of his own fate, circumstances and destiny- in the arena of his mind he can conquer numberless cosmological spheres and put an end to saṃsāra or the continuity of being, just as did the Buddha. But to do this he must perceive and realize the

ISBN: 978-93-93166-10-4

nature of kamma- the principle that governs his spiritual and material world.

As already mentioned before, according to Ânguttaranikaaya (From Burma, Rangoon vol III, no.1; 1952.) a belief that the cause of happiness or misery is God, Chance, or Fate leads to inaction. Our spiritual evolution depends upon our spiritual efforts and ourselves alone. The Buddha emphasized that the true knowledge could be gained by oneself, through insight, though it could not be imparted to others. The iddhi, or the so-called "supernatural powers" gained by the Arahats were simply the knowledge of hidden, unknown laws of the universe or the reality and an insight into their utility, but even they were regarded as only another greater obstacle to the attainment of freedom from the continuity of being. It is a man only who could understand and perceive the state of causality where, space, time or events have any existence. This, a man can understand by direct perception, which means breaking the bonds of relative existence, and acknowledging within oneself the asaṃkhata or unconditioned element. The thinking, reasoning, logical mind, after having consummated its exploration of phenomena and discovering in it absolute elements of

ISBN: 978-93-93166-10-4

impermanence and finding it completely void of any essential, absolute reality, endeavours to cease the generative impulses or the waves of continuity, and thus bring about final cessation of all processes. This final liberation or cessation of continuity is called Nibbāna.

Not only this, the constant creation-destruction process of the universe too could be understood with reference to man. When a cosmic entity is destroyed by natural or other forces at the end of an aeon (kappa), all that remains of it is a formless Brahmaloka, and it is this sphere which has to act as the potent arena of future rebirths, until a new cycle of the development of the universe (Saṃvatti) takes place according to the Brahmajala Sutta. It could be assumed that beings revolving in the saṃsāra are inseparably connected with one particular Cakkavāla , the history of which is like that of a living entity, that is to say, it is the history of a causal continuum, not of an individual, abiding, non-causal entity. The implication of this could be understood in an analogy between the individual and the universe. When a human being dies, he leaves nothing behind him but the potential of his kamma, which is instrumental in producing another psycho-physical organism to carry on the similar order of existence of

ISBN: 978-93-93166-10-4

conditioned phenomena, similarly a universe also meets it's end, but in due course another one starts to assume existence, addressing the same route of cause and effect, through the sum-totality of Kamma , of beings belonging to it. Thus every being in some sense identifies with his cosmic system, his cosmic system with him, until the time he realizes its unreal nature and puts an end to this unreal association by attaining Nibbāna.

Added to this, the Buddhist Texts make it clear that it is only a human being who is capable enough to communicate with the higher realms of being in the fine-material-plane but is possible by only those who have arduously achieved and cultivated the four Jhānas associated with the sphere of infinite space, infinite consciousness, no-thing-ness and neither-perception-nor-non-perception. Hinduism terms it as the "Union with Brahmā", and it is considered to be Salvation or Nirvana (Nibbāna).The Buddha who was a knower of Brahmā as he had on his own made acquaintance with the Brahmā-world, had known the truth about the Godlessness of the world-an achievement that was open to anybody who was ready and prepared to reach the level of the four jhānas. But this truth could not be revealed to them who had not gone beyond

ISBN: 978-93-93166-10-4

the realm of form and they were the ones who were liable to make the mistake of belief in a Creator-God. The Brahmajaala and Aggañña suttas of the Dīgha Nikāya , therefore give us an insight into the potentialities a man could reach in knowing the ultimate truths as did the Buddha himself.

Therefore, in any case, there is a clear connection in Buddhist thought between the total kamma of beings taking birth in a given world system and the fate of that system and the fate of that system considered as a physical identity. And since it is our kamma which decides the fate of the Universe, are we not Gods ourselves? This is precisely the reason why Buddhism has been described as a non-theistic religion by eminent sociologists like Durkheim (T. Ling, 1973: 17). Such definitions have been instrumental in creating a certain confusion with regards to the actual position of not only Buddhism as a theistic or non –theistic religion, but even as a religion for that matter- much to the inconvenience of the scholars who believe that it contains some palpable poly-theistic tendencies. But as Norman (1977:1) says that to a large extent this problem is a non-problem, since it arises only from western scholars attempts to classify Buddhism. He furthers his argument by

ISBN: 978-93-93166-10-4

saying that as soon as one interprets “non-theistic” as meaning “accepting the existence of devās but denying them any causal role in the universe”, then the problem disappears. This view perhaps, is the most pertinent- a view that this piece of writing has been endeavoring to establish. Once devās were denied any causal role, there existed no need to make sacrifices to them, propitiate them. The whole ritualistic paraphernalia which was so meticulously evolved by Brahmanism crumbled down and gave an almost entirely fresh flavor to the new tendency that developed in the sub-continent. A general belief is that Brahmanism had become so much overloaded by bloody sacrifices and elaborate rituals that the religious world of the common people had become almost unaffordable. It was to rid the laity of the burden of such complicated system that a ritual free Buddhism got evolved and to make it ritual free it was imperative to make it God- free. And perhaps it is just a matter of probe that if a religion without God in the conventional sense of the term became so popular and spread so rapidly, are the scholars in the academia justified in defining religion by underlining the necessity of the presence of God in the conventional way or has Buddhism given us a new definition of religion- a religion without God?

ISBN: 978-93-93166-10-4

To sum up, we could reiterate Norman's view (1977:1) that this problem is a non-problem, in the sense that Buddhism is a religion with both the theistic and non-theistic dimensions to it – a unique combination of the presence of Gods and their absence. It is a matter of how we look at it.

Bibliography

1. Buddhadatta Thera, A.P. (1962) Bauddha Darśanaya,2 Vols. Colombo.

2. Bodhi. (2000) The connected discourses of the Buddha: a new translation of the Saṃyutta Nikāya. Oxford: Pali Text Society in association with Wisdom Publications.

3. Swanson, G. E. (1964) The Birth of the Gods. University of Michigan.

4. Glasenapp, H. von. (1970) Buddhism, a Non-Theistic Religion (English transl.). London.

5. Smith, H. (1991) The World's Religions. San Francisco: Harper.

6. Horner, I.B. (1957) Middle Length Sayings, Vol.II. London: Pali Text Society.

ISBN: 978-93-93166-10-4

7. Norman, K.R. (1977) “The Buddha’s view of devas”, in Beitrage zur Indienforschung (Volume for Waldschmidt), 329-36, (1977).

8. Marasinghe, M.M.J. (1974) Gods in early Buddhism: a study in their social and mythological milieu as depicted in the Nikāyas of the Pāli canon. Vidyalankara Campus University of Sri Lanka (Ceylon), Kelaniya.

9. Kapstein M. T. (2004) The Buddhism Omnibus with an introduction. Oxford University Press.

10. Walshe, M. (1987) Thus have I heard. The long Discourses of the Buddha. London: Wisdom Publications.

11. Wagle, N.K. (1985) “The gods in Early Buddhism in relation to Human society: An aspect of their Function, Hierarchy, and Rank as depicted in the Nikāya Texts of the Pāli Canon”, in New Paths in Buddhist research, ed. Anthony Kennedy Warder, 57-80 (1985) Acorn Press, Durham, N.C.

12. Nyanaponika. (1981) Buddhism and the God Idea .Kandy.

13. Nyanaponika and Bodhi. (2000) Aṅguttara Nikāya: numerical discourses of the Buddha: an anthology of the

ISBN: 978-93-93166-10-4

suttas from the Aṅguttara Nikāya. New Delhi: Vistaar Publications.

14. Collins, S. (1998) Nirvana and other Buddhist felicities. Utopias of the Pali imaginaire, chapter 4, Cambridge: Cambridge University Press.

15. Ling, T.O. (1962) Buddhism and the Mythology of Evil. London.

16. Ling, T.O. (1973) The Buddha. London.

17. Bhikkhu Nanamoli and Bhikkhu Bodhi (1995) The middle length discourses of the Buddha: a new translation of the Majjhima Nikāya, Teachings of The Buddha. Wisdom Publications (Ma).

18. Masson V. M. (1992) History of Civilizations of Central Asia. Paris: UNESCO.

भगवान गौतम बुद्ध एवं भारतीय समाज (बौद्ध धर्म के उदय से 12वी शताब्दी तक)
ISBN: 978-93-93166-10-4

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का सामाजिक वैशिष्ट्य

For verification of this chapter, please visit on
http://www.socialresearchfoundation.com/books.php#8

डॉ रूचि श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग

महिला महाविद्यालय, बस्ती

उत्तर प्रदेश, भारत

Chapter ID: 17687

This is an open-access book section/chapter distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

आज व्यक्ति और समाज दोनों ही विविध भौतिक साधन सम्पन्न हैं, फिर भी मन अशान्त है। कारण स्पष्ट है कि दिन प्रतिदिन परस्पर पनपते अविश्वास की भावना, जातीय वैमनस्य, साम्प्रदायिक हिंसा, धार्मिक असहिष्णुता, अपराधीकरण, महिलाओं का अपमान एवं शोषण, मानवाधिकार हनन, भ्रूणहत्या, कानून का सरेआम उल्लंघन, राजनैतिक अपराधीकरण, निरंतर बढ़ती जनसंख्या का घनत्व, पर्यावरण प्रदूषण, भ्रष्टाचार एवं आतंकवाद इत्यादि समस्याओं से मानव जगत् आक्रान्त है, पीड़ित है और भयभीत भी। ऐसी ही विषम् परिस्थितियाँ आज से अनेकों वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध के समय में भी थीं।

ISBN: 978-93-93166-10-4

नाना प्रकार के दुःखों से संतप्त, विविध व्याधियों से पीड़ित एवं अशान्त मानव को सुखी बनाना एवं उसका कल्याण करना ही बौद्ध धर्म का प्रमुख लक्ष्य है। बुद्ध नें भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए स्पष्ट निर्देश दिया है कि "भिक्षुओं! लोगों के हित-सुख के लिए लोक पर दया करने के लिए, देव-मनुष्यों के कल्याण के लिए विचरण करो[1]।" इस प्रकार भगवान् बुद्ध की समस्त देशना मानव समाज एवं राष्ट्र के कल्याण एवं विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत है[1]। उज्जवल और पवित्र चरित्र के धारक बुद्ध का आत्म संयम प्रेरकदायी है। जनमानस को सदाचार के प्रति समर्पित बनाने में बुद्ध का हृदय प्राणीमात्र को सुखी करने के लिए करुणा से भरा था अतः उन्होंने अपना समस्त जीवन संसार के दुःख को दूर करने उपाय को खोजने में लगा दिया। भगवान् बुद्ध ने जो बोधि प्राप्त की उसका वितरण उन्होंने बिना भेद भाव के समस्त मानव जाति के लिए किया। इसीलिए बुद्ध की शिक्षाएँ समाज के हर वर्ग के उत्थान से जुड़ी हैं। उनका धर्म हर व्यक्ति के लिए था । उनका अपना शिष्य उपालि जाति का एक नाई था। अतः बुद्ध की शिक्षाएँ सिद्धान्त और व्यवहार में अंतर नहीं करती हैं[3]। सदाचार, अहिंसा, करुणा, मैत्री, सेवा आदि बुद्ध की शिक्षाओं के सुमधुर फल हैं। प्राणिहिंसा से सदैव दूर रहने का मार्ग प्रशस्त कर, प्राणियों में मैत्रीभावना का संचार करने की प्रेरणा, सुख और कल्याण को प्राथमिकता देने का उपदेश देकर बुद्ध ने विश्व का परम् कल्याण किया।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बुद्ध की निम्न शिक्षाएँ समाज के उत्थान हेतु नितांत उपयोगी हैं:-

ISBN: 978-93-93166-10-4

शील एवं सात्विक गुणों का विकास

शिक्षा का अन्यतम उद्देश्य जीवन में शील एवं सात्विक गुणों का विकास करना रहा है। व्यक्ति में शील, संयम, शुचिता, सत्यवादिता, कर्तव्य-परायणता, निष्ठा, प्रेम, त्याग, परोपकार आदि की भावना का संचार करना और उसे पल्लवित-पुष्पित करना बुद्ध की शिक्षाओं का परम उद्देश्य था। "शीलं सर्वत्र वै भूषणम्" के भाव को बौद्ध वाङ्मय में अनेक स्थानों पर अनेक ढंग से दुहराया गया है[4]। पाटलिग्राम (पाटलिपुत्र) के उपासकों को सम्बोधित करते हुए शील के पाँच महालाभ बताये है[5]:-

1. पाप-विषय में लिप्त न हो, सदाचारी बने रहे और अप्रमादी रहकर कर्तव्य का पालन करने से अपार भोग वस्तुओं की अनायास प्राप्ति होती है।

2. शीलवान पुरुष का सुयश सर्वत्र फैलता है।

3. शीलवान पुरुष निर्भय रहता है।

4. मरते समय शीलवान अपना ज्ञान नहीं खोता, चैतन्य रहता है।

5. मरने के बाद सुंदर गति प्राप्त होती है, स्वर्ग में जन्म ग्रहण करता है।

बौद्ध धर्म में सदाचार को शील कहा जाता है। उपदेशों के अनुसार आचरण करने वाला साधक ही 'श्रमण' कहलाने का अधिकारी होता था अन्यथा नहीं।

ISBN: 978-93-93166-10-4

पंचशील सदाचार के पाँच सार्वभौम नियम हैं। वे इस प्रकार हैं[6]-

1. प्राणातिपात (जीव-हिंसा से) विरति

2. मुसावाद (असत्य भाषण से) विरति

3. अदिन्नादान (चोरी से) विरति

4. पराञ्च (परस्त्रीगमन से) विरति

5. सुरामेयपानन्च (मद्यपान से विरति)

जो व्यक्ति इनका पालन करता है, उसका आचरण पवित्र माना जाता है।

कल्याणकारी- धर्म

गौतम बुद्ध महाकारुणिक एवं महाप्रज्ञ थे। संसार में व्याप्त दुःख निमगन एवं प्राणिमात्र का कल्याण ही उनका उद्देश्य था। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जन्म लेना, जरा, मरण, शोक करना, पीड़ित होना, रोना, विलाप करना, इष्ट वियोग एवं अनिष्ट संयोग ये सभी दुःख प्रद हैं, दुःख रूप हैं[7]। जन्म से मृत्युपर्यन्त प्राणी को दुःख ही दुःख भोगते हुए देखकर उन्होंने इसके कारण पर भी प्रकाश डाला और इसके जो हेतु; तृष्णा,[8] भव,[9] अविद्या आदि हैं, उससे छूटने का मार्ग भी प्रशस्त किया[10]। बुद्ध ने जिस धर्म का साक्षात्कार किया, उसे आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी और अन्त में भी कल्याणकारी कहा गया है[11]। **'धम्म पद'** में कहा गया है कि बुद्धिमान लोग धर्म अर्थात् भगवान् बुद्ध के वचनों को सुनकर उसी प्रकार शुद्ध निर्मल हो

ISBN: 978-93-93166-10-4

जाते हैं जिस प्रकार गम्भीर जलाशय में जल निर्मल हो जाता है[12], जो अच्छी तरह उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं, वे ही दुस्तर मृत्यु के सत्य को पार कर सकते हैं[13]।

मानव मात्र के प्रति प्रेम

'सुत्तनिपात' में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम करने का उपदेश दिया गया है। वहाँ कहा गया है कि शान्तपद (निर्वाण) की प्राप्ति के इच्छुक मनुष्य को चाहिए कि वह योग्य तथा अत्यन्त सरल बने। उसकी बात मृदु, सुंदर और विनम्रता से युक्त हो, वह संतोषी हो, अल्पकृत्य व अल्पवृत्तिवान् हो, इंद्रियसंयमी व अप्रगल्भी हो[14]। उपासक/साधक की यह भावना रहे की सभी प्राणी सुखी हों, सभी का कल्याण हो और सभी सुखपूर्वक रहें। जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान्, अणु या स्थूल, दुष्ट या अदुष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ जितने भी प्राणी हैं, सभी सुखपूर्वक रहें[15]। जिस प्रकार माता स्वयं की चिन्ता न कर अपने इकलौते पुत्र का संरक्षण करती है उसी प्रकार का असीम प्रेम व्यक्ति प्राणिमात्र के प्रति करें[16]। बुद्ध ने निष्पक्ष रूप से यह स्वीकार किया है, 'प्रत्येक जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, चाण्डाल, पुक्कस आदि सभी लाभ, यश-अपयश प्राप्त करते हैं तथा धर्माचरण कर महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो सकते है।" बुद्ध का यही निर्देश है कि प्रत्येक मानव को समाज में समानता का अधिकार है, मानव-मानव में किसी भी क्षेत्र में कोई अंतर नहीं[17]।

अहिंसा और करुणा

प्राणियों का वध क्यों नहीं करना चाहिए? इसका युक्ति युक्त

ISBN: 978-93-93166-10-4

विवेचन करते हुए भगवान् ने कहा कि सभी को अपना जीवन प्रिय है, अतएव अपने समान ही औरों को समझकर न मारो और दूसरों को भी किसी को मारने की प्रेरणा मत दो "अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य नप घातये"[18], बुद्ध कहते हैं कि जैसा मैं हूँ, वैसे ही ये प्राणी भी हैं, जैसे ये प्राणी हैं वैसा ही मैं भी हूँ, अतः ऐसा जानकर ही किसी की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए[19]। '**संयुक्त निकाय**' में बतलाया गया है कि जो शरीर वाणी और मन से भी हिंसा नहीं करता, दूसरों को चोट नहीं पहुँचाता, पीड़ित नहीं करता वही अहिंसक है[20]। कारुण्य अहिंसा का प्रधान केन्द्र है। उसके बिना अहिंसा जीवित नहीं रह सकती। समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करना इसकी मूल भावना है। हेयोपदेय ज्ञान से शून्य दीन पुरूषों पर, विविध सांसारिक दुःखों से पीड़ित पुरुषों पर, स्वयं जीवन याचक जीव जन्तुओं पर, अपराधियों पर, अनाथ बाल, वृद्ध, सेवकों आदि पर, दुःख पीड़ित प्राणियों पर उनके उद्धार की भावना ही कारूण्य भावना है। यही अहिंसामय धर्म है[21]।

कर्म परिपाक

बुद्ध नें सभी को समान स्वीकार करते हुए किसी भी प्रकार के सामाजिक वर्ग विभेद और जाति की उच्चता या निम्नता को नहीं माना। '**निमिजातक**' की गाथाओं[22] में उल्लेख है **"**मनुष्य के कर्मों को परखना चाहिए, जाति आदि की चिन्ता न करें। श्रेष्ठ धर्म का आचरण करने पर करने पर सभी वर्ण दुःखनिरोध को प्राप्त होते हैं, और अधर्म का आचरण करने पर सभी वर्ण नर्क में जाते हैं।**"** कहा गया है पुण्यकर्म करने वाले का पुण्य (भद्र) जब तक पकता नहीं, पुण्यात्मा दुःख भोगता हैं, किन्तु जब पुण्य पककर फल प्रकट करने लगता है तो

ISBN: 978-93-93166-10-4

फिर सुखों का अंत नहीं रह जाता[23]। अतः मनुष्य को सत्कर्म करते हुए धैर्य से काम लेना चाहिए। मनुष्य को निष्काम कर्म योगी की भाँति भूत व भविष्य की चिंता किए बिना, राग द्वेष का परित्याग कर शील और सदाचार से युक्त कर्म करते हुए जीवन यापन करना चाहिए। मानव के लिए नैतिक मानवीय गुणों से युक्त धर्माचरण उन्नति का मार्ग है। '**अयोधर जातक'[24]** की गाथा में उल्लेख है कि धर्म धर्माचारी की रक्षा करता हैं। भली प्रकार किए हुआ धर्म का यही फल है कि धर्माचारी कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

सदाचार एवं शिष्टाचार

मानवीय नैतिक आदर्शों से युक्त दूसरों की मंगल कामना का इच्छुक मानव सफल जीवन यापन करता है। **महामंगल जातक[25]** की गाथा में कहा गया है कि जो श्रद्धावान, प्रसन्नचित्त एवं संतुष्ट मन से अन्न, माला, गंध तथा लेप का दान करता हैं वह स्वर्ग सम्बन्धी मंगलकार्य करता है। मनुष्य को परिवार समाज में पारस्परिक प्रेम और सद्भावना से जीवन यापन करना चाहिए। **रुक्खधम्म जातक** की गाथा में निर्देशित किया गया है कि सभी संबधियों के आपस में एकता से शत्रु कष्ट नहीं पहुँचा सकते हैं। सामाजिक शिष्टाचार की शिक्षा देते हुए बुद्ध कहते हैं कि गृहस्थ का कर्त्तव्य है- समागत अतिथि का प्रसन्न मन से उठकर स्वागत करना, अभिवादन करना, बैठने के लिए आसन देना, किसी रखी हुई वस्तु को नहीं छिपाना, बहुत रहने पर थोड़ी न देना, जो भी दें आदरपूर्वक देना। जिस गृहस्थ कुल में ये बातें न हो वहाँ नहीं जाना चाहिए[26]। चार कर्म क्लेशों के नाश से इस लोक तथा परलोक की विजय होती है- (1) प्राणी

ISBN: 978-93-93166-10-4

न मारना (2) चोरी न करना (3) व्यभिचार न करना। (4) झूठ न बोलना। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने व्यावहारिक सदाचारी मार्ग अपनाने का उपदेश दिया[27]।

नैतिकता

बौद्ध धर्म एक उच्चस्तरीय नीतिशास्त्र की शिक्षा प्रदान करता है। उत्तम अष्टम मार्ग जिसके आधार पर व्यक्ति निर्वाण प्राप्त करता है, केवल आस्था अथवा ज्ञान का ही नहीं, अपितु व्यवहार का विषय है। गाथाओं[28] में उल्लिखित हैं कि 'जो मिले उसी से संतुष्ट रहना चाहिए, अतिलोभ महा पाप है, वह इस लोक में तो महान् कष्टदायक है ही, परलोक में भी पीछा नहीं छोड़ता है।' क्रोध मानव को मदान्ध कर देता है। कहा गया है,[29] 'क्रोध-भाजक पर भी क्रोध न करें।' ऐसा सत्पुरूष, जिसे क्रोध नहीं आता हैं और जो कुछ होने पर भी क्रोध प्रकट नहीं करता ऐसे आदमी को लोक में 'श्रमण' कहते हैं। क्रोध का परित्याग कर मधुर, शांतिपूर्ण व्यवहार जीवन का आदर्श होना चाहिए। वाणी पर संयम अत्यावश्यक है। भगवान बुद्ध कहते हैं- झूठ नहीं बोलना चाहिए, जो कठोर, निस्सार एवं व्यर्थ बातें करता है, वह सब पाप है। सभी प्रकार के पापों को न करना अच्छे कर्मों का उपार्जन करना, चित्त को एकाग्र करना यही बौद्ध धर्म है[30]।

बुद्ध की शिक्षाओं की वर्तमान में प्रासंगिकता

वैश्विक क्षैतिज पर मानव आज ज्ञान की अनेकानेक शाखाओं के अध्ययन के परिणाम स्वरूप प्रत्येक क्षेत्रों में व्याप्त कुरीतियों का कारा काटने में सफल अवश्य हुआ है, तथापि पारस्परिक कटुता एवं

ISBN: 978-93-93166-10-4

वैमनस्य के कारण तनाव आज भी अनुभव किया जा रहा है। यह तनाव समाज में वर्ग, जाति, धर्म, लिङ्ग, धन, प्रतिष्ठा आदि सम्प्रत्ययों के आधार पर एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति किए जाने के उसके मानवाधिकारों के हनन से उदभुत है। बौद्ध धर्म मानव को उसके कर्तव्यों के प्रति सचेत करता हुआ, उसे स्वावलंबी होने का उपदेश देता है। जब शुद्ध हृदय एवं दया भाव एक ही व्यक्ति में निहित हो जाते हैं तो वह व्यक्ति व्यक्तित्व की विराटता के कारण श्रद्धा का पात्र बनकर आराध्य बन जाता है, अर्थात् परम तत्व में अन्तनिर्हित हो जाने के कारण ईश्वरीय पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है, क्योंकि ईश्वर कोई कल्पनातीत सत्ता न होकर मानवता के उच्च शिखर पर सहअस्तित्व के परिवेश में सृजित मानवाधिकारों से युक्तता के कारण मानव का चरम विकास ही है। बौद्ध धर्म की विचारधारा में यह आदर्श नैतिकवाद के आधार पर उन सिद्धान्तों को लेकर उठा था जो समग्र मानवता हेतु कल्याणकारी थे[31]। विश्व में परमाणु हथियारों के आविष्कार एवं संग्रह करने की होड़ मची हुई है। जिससे उत्पन्न आतंकवाद और विश्वयुद्ध का भय सभी की चिंता का विषय बना हुआ है। ऐसे भयाक्रान्त जगत के लिए तथागत द्वारा उपदिष्ट अंहिसा का सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण है। विश्व में शांति तभी हो सकती है जब हम उनकी शिक्षाओं को जीवन में उतारें।

इस प्रकार महात्मा बुद्ध के उपदेश एवं शिक्षाओं के सूक्ष्म अनुशीलन से मानव के सदाचारी, पवित्र एवं सहअस्तित्व की भावना से जीवन यापन करने के निर्देश का पता चलता है। भगवान् बुद्ध द्वारा प्रज्ञप्त पंचशील, आर्याष्टादिक मार्ग एवं समत्व की मनोज भावना में

ISBN: 978-93-93166-10-4

ही विश्व कल्याण समाहित है।

संदर्भ

1. **महावग्ग**, पृ0. 23

"**भिक्खवे चरिकं, बहुजनहिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय देवमनुस्सानं** ।"

2. जिनेन्द्र जैन, **जैनविद्या एवं बौद्ध अध्ययन के आयाम,** राधा पब्लिकेशंस नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ. 94

3. **तत्रैव** पृ0 92

4. **जातक कथा** , 5, 362.66, उद्धृत, नत्थूलाल गुप्त, **जैन-बौद्ध शिक्षण-पद्धति**, विश्वभारती प्रकाशन प्रथम, संस्करण 1985, नागपुर, पृ0 89

5. पं० राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित , **विनयपिटक** पृ0 239

6. **धम्मपद** , 246-247

7. **बुद्ध चरित**, 15-47 विभङग् पृ० 99, **दीघनिकाय** भाग-2 पृ० 304-5(रोमन)

8. **अभिधर्म कोष** ,भाष्य 3.27 पृ0-135

9. **संयुक्त निकाय** , 3.96

10 . **दीघनिकाय**, भाग-2, पृ0-80

ISBN: 978-93-93166-10-4

11. **मज्झिमनिकाय**, 1.3.7, **हत्थिपेदोप समसुत्त**

12. **धम्मपद**, 82,

अथापि रहदो गम्भीरो विप्पसीदन्ति अनाविलो । एवं धम्मनि सुवान विषप्पसीदन्ति पण्डिता ।।

13. **तत्रैव**, 86,

14. जिनेन्द्र जैन, **पूर्वो0**, पृ०. 95

15. **मेत्तसुत्त** 4-5

16. **तत्रैव**, 7 **माता यथा नियं पुत्तआयुसा एक पुत्र मनुरक्खे ।एवं पि सव्वभूतेसु मानसं भावये अपरियाणं ।।**

17. कैलाश चन्द्र जैन, **प्राचीन भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक अध्ययन,** श्री पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1986 पुनः संस्करण 1996, पृ0 229

18. **धम्मपद गाथा**, 129-130

19. **सुत्तनिपात, नालक सुत्त**, 27 ,

यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहं । अत्तानं उपनं कता हनेय्य न घातये ।।

20. **संयुक्तनिकाय** , भाग-1, पृ0 – 164

21. जिनेन्द्र जैन, **पूर्वो०**, पृ० 100

ISBN: 978-93-93166-10-4

22. **जातक** ,षष्ठ ,गा० 427-28, पृ० 100

23. **खदिरंगार जातक** , उद्धृत, नत्थूलाल गुप्त, **पूर्वोद्धृत** , पृ० 96

24- **जातक**, चतुर्थ, गाथा 342, पृ0 496

25- **जातक**, प्रथम, गा० 73, पृ० 329

26. **सत्तक**, अगुंतर निकाय

27- जिनेन्द्र जैन, **पूर्वो0** , पृ0-099

28. **जातक** , प्रथम गा0, - 132, पृ0 476, तृतीय गा० 99, पृ0 207

29- **जातक** ,षष्ठ ,257, **जातक,** तृतीय, गा० 27-32, पृ0 440

30. जिनेन्द्र जैन, **पूर्वो0**, पृ० 366

31. अजय कुमार पाण्डेय (संपादक), **बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम,** प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली ,प्रथम संस्करण 2006, पृ0 100

भगवान गौतम बुद्ध एवं भारतीय समाज (बौद्ध धर्म के उदय से 12वी शताब्दी तक)
ISBN: 978-93-93166-10-4

बौद्ध धर्म की शिक्षा और सिद्धान्त

For verification of this chapter, please visit on
http://www.socialresearchfoundation.com/books.php#8

डॉ. शैलेन्द्र कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

समाजशास्त्र विभाग

बैसवारा पी0जी0 कॉलेज

लालगंज, रायबरेली उत्तर प्रदेश, भारत

Chapter ID: 17747

This is an open-access book section/chapter distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के संस्थापक थे। इनका जन्म 563 ई0पू0, में कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी ग्राम में हुआ था। गौतम बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोधन था जो कपिलवस्तु के राजा थे। सिद्धार्थ के जन्म के सातवें दिन उनकी माता महामाया का निधन हो गया। उनकी मौसी प्रजापति ने उनका पालन पोषण किया।

राजा शुद्धोधन ने अपने पुत्र का भविष्य जानने के लिये राज्य के आठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। इन ब्राह्मणों में से सात ने बुद्ध के शरीर को देखकर बताया कि यदि इस बालक ने संसारी रहना निश्चित किया तो सम्राट बनेगा और यदि यह संसार छोड़कर ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग पर चला तो 'बुद्ध' बनेगा। पर आठवें, ब्राह्मण कोण्डन्य ने स्पष्टतः कहा "हे

ISBN: 978-93-93166-10-4

राजन तुम्हारा पुत्र आगे चलकर चार विशेष चिन्ह देखेगा और उन्हें देखकर संसार त्याग कर बोधि प्राप्ति के लिये निकल पड़ेगा। उसे बोधि मिलेगी और वह बुद्ध हो जायेगा।''

16 वर्ष की उम्र में गौतम बुद्ध का विवाह शाक्य कुल की कन्या यशोधरा से हुआ। यशोधरा से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र के पैदा होने पर सिद्धार्थ प्रसन्न नहीं हुये वरन उसे मोह-बन्धन मानकर 'राहु' कहा तथा उसका नाम राहुल रखा। 29 वर्ष की आयु में (534 ई0पू0) गौतम बुद्ध ने गृह त्याग किया।

ज्ञान की खोज में सर्वप्रथम वैशाली में अलारकलाम नामक सांख्य दर्शन के तपस्वी के आश्रम में गये और उपनिषद की शिक्षा ग्रहण की परन्तु वे संतुष्ट नहीं हुये। अतः यहां से वे राजग्रह में 'रूद्रकरामपुत्त' नामक दूसरे आचार्य के पास गये।

इसके बाद सिद्धार्थ गया गये वहां उन्होंने छः वर्षों तक कठोर तपस्या की। पीपल के वृक्ष के नीचे वैशाख पूर्णिमा की रात को 35 वर्ष की आयु में सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ और अब वे बुद्ध तथागत कहलाए।

ज्ञान प्राप्ति के बाद सबसे पहले बुद्ध गया से काशी के सारनाथ आये यहाँ उन्होंने पाँच पूर्व ब्राहमण साथियों को उपदेश दिया। यह प्रथम उपदेश धर्म चक्र प्रवर्तन कहलाता है। सारनाथ से बुद्ध वाराणसी गये और यहां पर यश नामक धनवान श्रेष्ठि को अपना शिष्य बनाया। वाराणसी में ही 60 भिक्षुओं ने मिलकर संघ का निर्माण किया। वाराणसी से बुद्ध उरूवेला गये तत्पश्चात् राजग्रह गये जहां शासक बिम्बिसार उनका शिष्य बना।

ISBN: 978-93-93166-10-4

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त- महात्मा बुद्ध एक व्यवहारिक धर्म सुधारक थे। बुद्ध ने अपने धर्म में सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक, राजनीतिक, स्वतन्त्रता एवं समानता की शिक्षा दी। इसे मानवीय धर्म भी कहा कहा जाता है। बौद्ध धर्म मूल रूप से अनीश्वरवादी अनात्मवादी है अर्थात् इसमें ईश्वर और आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है। बौद्ध धर्म का मूलाधार चार आर्य सत्य हैं।

चार आर्य सत्य- बौद्ध धर्म के सारे सिद्धान्त तथा बाद में विकसित विभिन्न दार्शनिक मतवादों के आधार चार आर्य सत्य ही हैं। ये निम्नलिखित हैं-

1. पहला आर्य सत्य दुःख है। जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है, प्रिय का बिछुड़ना दुःख है, इच्छित वस्तु का न मिलना दुःख है।

2. दुःख समुदाय का दूसरा आर्यसत्य तृष्णा है, जो पुनुर्भवादि दुःख का मूल कारण है। यह तृष्णा राग के साथ उत्पन्न हुई है। सांसारिक उपभोगों की तृष्णा, स्वर्गलोक में जाने की तृष्णा और आत्महत्या करके संसार से लुप्त हो जाने की तृष्णा, इन तीन तृष्णाओं से मनुष्य अनेक तरह का पापाचरण करता है और दुःख भोगता है।

3. तीसरा आर्यसत्य दुःख निरोध है। यह प्रतिसर्गमुक्त और अनालय है । तृष्णा का विरोध करने से निर्वाण की प्राप्ति होती है, देहदंड या कामोपभोग से मोक्षलाभ प्राप्त नहीं होता।

4. चौथा आर्यसत्य दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा है अर्थात् दुःख निदान के उपाय हैं। इसी आर्य सत्य को आष्टांगिक मार्ग भी कहते हैं। यह आठ

ISBN: 978-93-93166-10-4

मार्ग- (i) सम्यक दृष्टि (ii) सम्यक संकल्प (iii) सम्यक वचन (iv) सम्यक कर्मांत (v) सम्यक आजीव (vi) सम्यक व्यायाम (vii) सम्यक स्मृति (viii) सम्यक समाधि हैं।

दुःख का निरोध इसी मार्ग पर चलने से होता है।

आष्टांगिक मार्ग-

1. सम्यक् दृष्टि- दुःख का ज्ञान, दुःखोदय का ज्ञान, दुःख निरोध का ज्ञान

और दुःख निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान इस आर्यसत्य-चतुश्य के सम्यक ज्ञान को सम्यक दृष्टि कहते हैं।

2. सम्यक् संकल्प-राग, हिंसा, प्रति हिंसा रहित संकल्प को ही सम्यक संकल्प कहते हैं।

3. सम्यक् वचन- झूठ, चुगली, कटु वचन और बकवास से रहित सच्ची मीठी बातों का बोलना।

4. सम्यक् कर्मांत- प्राणी हिंसा, चोरी, व्याभिचार रहित कार्य ही ठीक कार्य हैं।

5. सम्यक् जीविका-जीविका के मिथ्या साधनों को छोड़कर अच्छी-सच्ची जीविका से जीवन व्यतीत करना ही सम्यक जीविका है। बुद्ध ने 'हथियार का व्यापार, प्राणि का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार, विष का व्यापार को झूठी जीविका कहा। इनसे बचने को कहा।

6. सम्यक् व्यायाम-'अकुशल' धर्म अर्थात् पाप उत्पन्न न होने देने के

ISBN: 978-93-93166-10-4

लिये निश्चय करना, परिश्रम करना, उद्योग करना, चित्त को पकड़ना और रोकना तथा कुशल धर्म अर्थात् सत्कर्म की उत्पत्ति, स्थिति विपुलता और परिपूर्णता के लिये उद्योग करना ही सम्यक् व्यायाम है।

7. सम्यक् स्मृति- काया, वेदना, चित्त और मन के धर्मों की ठीक स्थितियों- उनके मलिन, क्षण विध्वंसी आदि होने का सदा स्मरण रखना।

8. सम्यक् समाधि- "चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं। इस सम्यक् समाधि की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और ध्यानरूपी चार सीढ़ियां हैं पहले ध्यान में वितर्क, विचार, प्रीति (प्रमोद) सुख और एकाग्रता होते हैं।

दूसरे ध्यान में वितर्क और विचार का लोप हो जाता है। प्रीति, सुख और एकाग्रता ये तीन मनोवृत्तियां ही रहती हैं।

तीसरे ध्यान में प्रीति का लोप हो जाता है, केवल सुख और एकाग्रता ही रहती है।

चौथे ध्यान में सुख भी लुप्त हो जाता है, उपेक्षा और एकाग्रता ही रहती है।

इन आष्टांगिक मार्गों को अपनाने से व्यक्ति निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

प्रतीत्य समुत्पाद

प्रतीत्य समुत्पाद बुद्ध के उपदेशों का सार है तथा बुद्ध की शिक्षाओं का आधार स्तम्भ है। प्रतीत्य का अर्थ आश्रित रहना तथा समुत्पाद का अर्थ उत्पत्ति है अर्थात् प्रत्येक घटना किसी दूसरी घटना पर आश्रित रहती है । प्रतीत्य समुत्पाद को कार्य कारण सिद्धान्त भी कहते हैं। इसके अनुसार कोई भी घटना/कार्य स्वतन्त्र नहीं होता बल्कि प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बुद्ध अपने प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त के अन्तर्गत दुःख के कारणों की खोज करते हैं और 12 कार्य-कारणों की एक श्रृंखला प्रस्तुत करते हैं जिसे 'द्वादश निदान' कहते हैं। इसे संसार चक्र या भवचक्र भी कहते हैं।

1. जरा-मरण-जरा-मरण का सामान्य अर्थ वृद्धावस्था है इसका व्यापक अर्थ दुःख से है। जरामरण का कारण जाति है।

2. जाति- जाति का अर्थ जन्म लेना है।

जरा-मरण के समस्त दुःखों का कारण जन्म लेना है।

3. भव- भव का अर्थ जन्म ग्रहण करने की इच्छा है।

जन्म लेना का कारण, जन्म ग्रहण करने की इच्छा है।

4. उपादान- उपादान का अर्थ जगत की वस्तुओं के प्रति मोह है।

भव का कारण उपादान है।

5. तृष्णा- तृष्णा का अर्थ विषयों के प्रति आसक्ति है।

उपादान का कारण तृष्णा है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

6. वेदना- वेदना का अर्थ इन्द्रियानुभव है।

तृष्णा का कारण वेदना है।

7. स्पर्श- स्पर्श का अर्थ इन्द्रियों का विषयों के संयोग की अवस्था है।

वेदना का कारण स्पर्श है।

8. षडायतन- षडायतन का अर्थ 6 इन्द्रियों (पंच ज्ञानेन्द्रियां + मन) से है।

स्पर्श का कारण षडायतन है।

9. नामरूप- नाम रूप का अर्थ मन युक्त गर्भस्थ शरीर है।

षडायतन का कारण नामरूप है।

10. विज्ञान- विज्ञान का अर्थ चेतना है।

नामरूप का कारण विज्ञान है।

11. संस्कार- संस्कार का अर्थ पूर्व जन्म के कर्म है।

विज्ञान का कारण संस्कार है।

12. अविद्या- अविद्या का अर्थ ज्ञान का अभाव है।

संस्कार का कारण अविद्या है।

अतः जन्म मरण का अन्तिम कारण अविद्या है। समस्त दुःखों का कारण अविद्या है। बुद्ध के अनुसार अविद्या का नाष 'बोधि' या 'बुद्धत्व' द्वारा ही सम्भव है। अविद्या का नाश होते ही मुक्ति या निर्वाण की

ISBN: 978-93-93166-10-4

प्राप्ति होती है।

नैरात्मवाद एवं क्षणभंगवाद का सिद्धान्त-

बौद्ध दर्शन में नैरात्मवाद एवं क्षणभंगवाद का दर्शन महत्वपूर्ण है। बौद्ध धर्म में आत्मा को स्वीकार नहीं किया गया है। इसके अनुसार व्यक्ति की आत्मा उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हो जाती है।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त-

महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म को कर्म प्रधान बनाने के लिये कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त की व्याख्या की थी। उनके अनुसार व्यक्ति को उसके कर्म के अनुसार फल मिलेगा।

बुद्ध का मानना था कि जिस प्रकार समुद्र की लहरें आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार पुनर्जन्म होता है। अर्थात् पहली लहर अपनी ऊर्जा दूसरी लहर को देती है और स्वयं समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार दूसरी लहर अपनी ऊर्जा तीसरी को देती है और इसी प्रकार लहरें बनती चलती हैं। अतः पहला जीवन अपना कर्मफल दूसरे जीवन को देकर नये जीवन की शुरूआत करता है। इस प्रकार पुनर्जन्म कर्मफल से होता है न कि आत्मा से।

अनीश्वरवाद

बौद्ध धर्म मूलतः अनीश्वरवादी है। सृष्टि का कारण ईश्वर को नहीं मानता है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

कर्म का सिद्धान्त

बौद्ध धर्म में कर्म को महत्व दिया गया है जो मनुष्य सम्यक् कर्म करेगा वह निर्माण का अधिकारी होगा।

प्रयोजनवाद

बुद्ध नितान्त प्रयोजनवादी थे। उन्होंने अपने को सांसारिक विषयों तक सीमित रखा।

निर्वाण

बौद्ध धर्म में निर्वाण का अर्थ तृष्णा का समाप्त हो जाना है। तृष्णा और वासना से ही दुःख होता है। दुःखों से पूरी तरह छुटकारे का नाम है- निर्वाण। बुद्ध ने निर्वाण को परम सुख पद, अमृत पद, परमशांति की अवस्था कहा है। निर्वाण इसी जन्म में प्राप्त हो सकता है किन्तु महापरिनिर्वाण मृत्यु के बाद ही सम्भव है।

बुद्ध के दस शील

बौद्ध धर्म नैतिक आधार पर आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग दिखाता है। दस शील बौद्ध धर्म के आचरण के दस नियम हैं।

1. अहिंसा - किसी भी जीव की हत्या करना हिंसा है। इससे बचना चाहिये।

2. सत्य - झूठ कभी नहीं बोलना चाहिये। हमेशा सत्य के मार्ग पर चलना चाहिये।

3. अस्तेय - चोरी न करे। दूसरों की सम्पत्ति की चाह न करें।

ISBN: 978-93-93166-10-4

4. अपरिग्रह - जितनी आवश्यकता है उतनी ही सम्पत्ति रखें। आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति इकट्ठा न करें।

5. ब्रह्मचर्य - व्याभिचार से बचें।

6. अविलासिता - विलासिता से दूर रहें। गाने-बजाने में भाग न लें।

7. मादक द्रव्यों से दूरी- मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिये।

8. असमय भोजन का त्याग- असमय भोजन से बचें, निश्चित समय पर ही भोजन करें।

9. सुखप्रद बिस्तर पर ना सोना- आरामदायक बिस्तर पर नहीं सोना चाहिये।

10. कंचन कामिनी का त्याग - कंचन कामिनी अर्थात् सोना तथा स्त्री संग का त्याग करना चाहिये।

उपर्युक्त नैतिक शिक्षाओं के अतिरिक्त बुद्ध ने सभी व्यक्तियों को माता-पिता की आज्ञा पालन करने, गुरूजनों के प्रति श्रद्धा रखने, दान देने, प्रेम और उदारतापूर्ण व्यवहार करने का भी उपदेश दिया।

पंच स्कन्ध- मनुष्य का शरीर पांच स्कन्धों से बना हुआ है ये निम्नः-

1. रूप

2. संज्ञा

3. वेदना

4. विज्ञान

ISBN: 978-93-93166-10-4

5. संस्कार

बुद्ध ने महापरिनिर्वाण के समय भिक्षुओं को उपदेश देते हुए चार स्मृति प्रस्थान (चार, आर्य सत्य) चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धि पाद, पांच इन्द्रियां, पांच बल तथा आठ आष्टांगिक मार्ग की चर्चा की है।

चार सम्यक प्रधान

1. दोषपूर्ण संस्कारों को उत्पन्न न होने देना।

2. दोषपूर्ण संस्कारों को उत्पन्न होने पर उनका विनाश करना।

3. अच्छे संस्कारों को उन्नत करना।

4. अच्छे संस्कार उत्पन्न होने पर उनकी वृद्धि एवं रक्षा करना।

चार ऋद्धि पाद- द्वन्द, वीर्य, चित्त एवं विमर्ष।

पांच इन्द्रियां एवं बल- श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रभा।

बौद्ध धर्म की मान्यताएं

1. यह संसार दुःखमय है।

2. यह संसार क्षणिक है।

3. यह संसार आत्माविहीन है।

4. कर्म और पुनर्जन्म का अस्तित्व है।

बौद्ध दर्शन के अनुसार यह सृष्टि विभिन्न चक्र में विभाजित है-

1. बुद्ध चक्र

ISBN: 978-93-93166-10-4

2. शून्य चक्र

इसी बुद्ध चक्र के दिये गये निम्न उपदेश हैं-

1. कुकुच्चन्द

2. कनकमुनि

3. कश्यप

4. शाक्य मुनि (महात्मा बुद्ध)

5. मैत्रेय-यह आने वाला भावी बुद्ध है जो सफेद घोड़े पर सवार होगा।

6. बौद्ध धर्म के त्रिरत्न- बुद्ध, धम्म और संघ

बौद्ध संघ

बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों बुद्ध, धम्म एवं संघ में संघ का स्थान महत्वपूर्ण था। सारनाथ में धर्म का उपदेश देने के बाद अपने पांच ब्राह्मणों शिष्यों के साथ बुद्ध ने संघ की स्थापना की। बाद में यश नामक धनी व्यापारी एवं अन्य वैश्यों को भी संघ का सदस्य बनाया।

बुद्ध ने किसी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत नहीं किया। उन्होंने कहा कि धर्म एवं संघ के निर्धारित नियम ही उनके उत्तराधिकारी हैं।

संघ का गठन एवं कार्य प्रणाली

बौद्ध संघ का संगठन गणतांत्रिक प्रणाली पर आधारित था। प्रस्ताव पाठ को अनुसावन कहते थे। प्रस्ताव पर आपत्ति होने पर फैसला वाद-विवाद के पश्चात मतदान द्वारा दिया जाता था। मतदान गुप्त तथा

ISBN: 978-93-93166-10-4

प्रत्यक्ष दोनों तरीके से हो सकता था। मतदान के बाद बहुमत का निर्णय ही सर्वमान्य माना जाता था। सभा की कार्यवाही के लिये न्यूनतम उपस्थिति संख्या 20 की जरूरत होती थी।

संघ में प्रवेश की प्रक्रिया

संघ में प्रवेश को 'उपसम्पदा' कहा जाता था। प्रवेश के समय व्यक्ति पहले सिर मुँड़ा लेता था, फिर घुटने टेककर और हाथ जोड़कर तीन बार कहता, 'बुद्धं शरणं गच्छामि' (मैं बुद्ध की शरण में जाता हूं), धम्मं शरणं गच्छामि (मैं धर्म की शरण जाता हूं), संघ शरणं गच्छामि (संघ की शरण जाता हूं)। संघ की सदस्यता लेने वाले को पहले 'श्रमण' का दर्जा मिलता था और 10 वर्षों के पश्चात यदि उसकी योग्यता स्वीकृत हो जाती थी तो फिर उसे भिक्षु का दर्जा मिलता था।

प्रारम्भ में संघ का द्वार सभी जाति एवं वर्गों के लिये खुला था परन्तु बाद में बुद्ध ने अल्पवयस्क, चोर, हत्यारों, ऋणी व्यक्तियों, राजा के सेवक, दास तथा योगी व्यक्ति का संघ में प्रवेश वर्जित कर दिया। स्त्रियों का पुरूष भिक्षुओं से अलग अपना एक पृथक संघ होता था, किन्तु स्त्री संघ को पुरूष भिक्षुओं के संघ के अधीन रखा जाता था। संघ का संस्थापक ही संघ का नियम बना सकता था, उसका कोई सदस्य नहीं। सदस्यों को उन नियमों का पालन करना पड़ता था।

बौद्ध धर्म में दो प्रकार के अनुयायी थे-

1. उपासक-जो गृहस्थ जीवन व्यतीत करता था।

2. भिक्षु-जो सन्यासी जीवन व्यतीत करता और गेरूआ वस्त्र धारण

ISBN: 978-93-93166-10-4

करता था।

भिक्षु लोग वर्षाकाल को छोड़कर अन्य समय धर्म का उपदेश देते हुए भ्रमण करते रहते थे। भिक्षुओं को 3 महीने तक वर्षा के दिनों में एक ही जगह रहना पड़ता था जिसे 'वस्सस' कहा जाता था।

बौद्ध संगीतियाँ

प्रथम बौद्ध संगीति-प्रथम बौद्ध संगीति बुद्ध की मृत्यु के तत्काल बाद लगभग 483 ईसा पूर्व में राजग्रह की सप्तपर्णि गुफा में हुई। इस समय मगध का शासक अजातशत्रु था। इस संगीति की अध्यक्षता महाकस्स्प ने की तथा इसमें बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनन्द और उपालि भी उपस्थित थे। इस संगीति में बुद्ध की शिक्षाओं का संकलन हुआ तथा उन्हें सुत्त एवं विनय नाम के दो पिटकों में विभाजित किया गया।

द्वितीय बौद्ध संगीति-द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन बुद्ध की मृत्यु के लगभग 100 वर्ष पश्चात 383 ईसा पूर्व में वैशाली में हुआ। इस समय मगध का शासक कालाशोक था। इस संगीति की अध्यक्षता साबकमीर ने की थी। पूर्वी और पश्चिमी भिक्षुओं के बीच उत्पन्न मतभेद को सुलझाने हेतु इस सभा का आयोजन किया गया।

तृतीय बौद्ध संगीति- तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन 250 ईसा पूर्व में पाटलीपुत्र में हुआ। इस समय मगध का शासक अशोक था। इस संगीति की अध्यक्षता मोग्गलिपुत्त तिस्स ने की। इसमें अभिधम्मपिटक की रचना हुयी। इसमें धम्म के सिद्धान्त की दार्शनिक व्याख्या मिलती है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

चतुर्थ बौद्ध संगीति-चतुर्थ बौद्ध संगीति प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व कश्मीर के कुण्डलवन में हुई। इस समय शासक कनिष्ठ था। इस संगीति की अध्यक्षता वसुमित्र ने की और उपाध्यक्ष अश्वघोष था। इस संगीति में 'विभाषाशास्त्र' नामक टीका की रचना हुई। इस संगीति में बौद्ध धर्म हीनयान और महायान दो प्रमुख सम्प्रदायों में विभाजित हो गया।

बौद्ध धर्म ने ही सर्वप्रथम भारतीयों को एक सरल, आडम्बर रहित मानवतावादी धर्म प्रदान किया जिसका अनुसरण बिना भेदभाव के सभी लोग कर सकते थे। बुद्ध धर्म ने भारत सहित विश्व को शान्ति, अहिंसा, बंधुत्व, सह अस्तित्व का पाठ पढ़ाया। बुद्ध के विचारों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह मानव जीवन की अनेक समस्याओं को हल कर सकता है।

बुद्ध को जिस साधना से बोधि की प्राप्ति हुई। उसे विपश्यना कहते हैं । विपश्यना यानि आत्मनिरीक्षण के लिये अपने भीतर की ओर देखना जो अपने अन्तर में झाँक सकने का साहस कर सकता है वह बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है। वे किसी भी विचार को स्वयं विवेक की कसौटी पर कसने की बात कहते थे।

बुद्ध ने अपने धम्म में समानता पर बल दिया। उन्होंने महिलाओं को दीक्षा का अधिकार देकर भिक्षुणी बनने का अधिकार दिया। गौतम बुद्ध ने स्त्रियों की शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता पर भी बल दिया। भिक्षुणी संघ में स्त्रियों को लगातार शिक्षा संस्कृति और त्याग साधना सिखाई जाती थी जिसमें उनके व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास हुआ।

बुद्ध ने कहा कि ऊँचे आदर्शों का महत्व है, ऊँचे वर्ण में जन्म ग्रहण

ISBN: 978-93-93166-10-4

करने का नहीं। जन्म से न तो कोई ब्राह्मण होता है और न कोई शूद्र। इंसान का मूल्य उसकी जाति या वर्ण से नहीं, उसके कर्मों से आंका जाता है। उन्होंने समतामूलक समाज की स्थापना करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे सर्वधर्म समभाव के पक्षधर थे। उन्होंने कभी अपनी शिक्षाओं की प्रशंसा को न तो जरूरत से ज्यादा महत्व दिया और न ही उसकी आलोचना करने वालों की निन्दा की।

उनका कहना था कि चोरी, हिंसा, नफरत, निर्दयता जैसे अपराधों और अनैतिक कार्यों का कारण गरीबी है। गरीबी को दूर करके इन अपराधों को रोका जा सकता है।

उन्होंने प्रजातान्त्रिक मूल्यों को बहुत महत्व दिया। राजकीय शासन व्यवस्था कानून और नियमों के अनुसार होनी चाहिये। उनमें परिवर्तन जनप्रतिनिधि सभा में विचार विमर्श के उपरान्त होना चाहिये। राजा को मुकदमों का फैसला राग, द्वेष आदि विचारों के वशीभूत होकर नहीं बल्कि धर्म से, न्याय से करना चाहिये।

बुद्ध का उपदेश "बैर से बैर कभी शान्त नहीं होता, अबैर से ही बैर शान्त होता है यही संसार का सनातन नियम है।" बुद्ध का यह उपदेश विश्व में शान्ति बनाये रखने में सहायक है। उन्होंने युद्ध का हर सम्भव विरोध किया। युद्ध किसी समस्या का हल नहीं क्योंकि युद्ध में हमेशा जन-धन की अपार क्षति होती है। बुद्ध के अनुसार हर राष्ट्र की विदेश नीति पंचशील और परस्पर शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व पर आधारित होनी चाहिये।

आज जब दुनिया में अशांति बढ़ रही है। यूक्रेन-रूस युद्ध दुनिया को

ISBN: 978-93-93166-10-4

प्रभावित कर रहा है। भौतिकवाद, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, नक्सलवाद बढ़ रहा है। ऐसे में बुद्ध की शिक्षा एवं सिद्धान्त के द्वारा ही विश्व को शान्ति के मार्ग पर लाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अंगने लाल, बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्था, लखनऊ 2008

2. आनन्द श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध और उनके उपदेश राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली 2006

3. धर्मानन्द कोसाम्बी, भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2020

4. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 2018

5. डॉ0 परमानन्द सिंह, बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 2016

6. राहुल सांकृत्यायन, बौद्ध दर्शन, किताब महल 2022

7. डॉ0 सद्धातिस्स, बुद्ध जीवन और दर्शन, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020

8. वियोगी हरि, बुद्धवाणी, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020

9. https://indianwikipedia.com/baudh-dharm-siddhant

ISBN: 978-93-93166-10-4

10. https://sanjeevnitoday.com/editorial/gautam-buddha-gave-the-message-of-app-deepo-bhava-to-the/cid1980812.htm

ISBN: 978-93-93166-10-4

बीकानेर संभाग के तीर्थ स्थल

डॉ. अमित मेहता
सहायक आचार्य
इतिहास विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय,
सीकर, राजस्थान, भारत

सारांश

राजंस्थान राज्य वर्तमान में सात संभागों जयपुर, जोधपुर, अजमेर, कोटा, उदयपुर, बीकानेर तथा भरतपुर में विभक्त है। बीकानेर संभाग के अंतर्गत बीकानेर, श्री गंगानगर, हनुमानगढ़ तथा चुरू चार जिलें आते है। इस संभाग का क्षेत्रफल 64,708 वर्ग कि.मी. है। यहॉ अनेक तीर्थ स्थल धर्मिक आस्था व सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में स्थित है।

तीर्थ स्थल धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व वाले स्थान को कहते है। तीर्थ संस्कृत भाषा का एक शब्द है जो तीर (किनारा) और अथ (स्थान) से बना है जिसका अर्थ किसी नदी या पवित्र सरोवर पर स्थित होना है। अन्य शब्दों में तीर्थ वह है जो पवित्र, हृदय को सुकुन, मन को शांति, पुण्य, मोक्ष और बुद्धि को स्थिरता प्रदान करें। बीकानेर संभाग में स्थित प्रमुख तीर्थ स्थल इस प्रकार है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

करणी माता का मन्दिर

बीकानेर से लगभग 25 किलोमीटर दूर दक्षिण में स्थित देशनोक नामक स्थान पर यहाँ के शासकों की कुल देवी करणी माताजी का मन्दिर निर्मित है। ऐसी मान्यता है कि इनके कृपा से ही राठाड़ों का अधिकार इस क्षेत्र पर हुआ था। किसी भी यात्रा या अभियान पर निकलने से पूर्व बीकानेर नरेश यहां आकर करणी माता का आर्शीवाद प्राप्त करते थे। करणी माता चारण जाति की स्त्री थी जो अपनी तपस्या के बल पर स्वयं देवी बन गयी। करणी माता के पिता का नाम मेहा था, इनकी पत्नी देवल के गर्भ से वि. संवत 1444 के अश्विन मास की सप्तमी को करणी का जन्म हुआ। उनके जन्म का नाम श्रृदिबाई था । इनका करणी नाम उनकी बुआ ने उनके अद्भूत बाल चरित्र को देखकर रखा। इनका विवाह ग्राम साठीका में रोहड़िया शाखा के चारण केलू बिठू के पुत्र देपा के साथ वि. संवत 1473 में 29 वर्ष की आयु में हुआ था। इस मन्दिर के पुजारी भी चारण हैं। इस मन्दिर में सफेद चुहे भी है जो करणी माता के 'काबे' कहलाते है। कहा जाता है कि मंदिर में इन्हें देखकर भक्त जो भी मन्नौती मांगता है, वह अवश्य ही पूर्ण होती है । यहाँ पर चूहो को पकड़ने की मनाही है। किसी श्रृद्धालु के पैर से कुचलकर कोई चूहा मर जायें तो उसे प्रायश्चित स्वरूप मन्दिर में सोने का चूहा चढ़ाना पड़ता है।

वि. सं. 1493 में करणी ने अपने हाथों से विशाल प्रस्तर खण्डों को एक के ऊपर एक रखकर बिना चुना और गारे के एक गोलाकर गुम्बारें का निर्माण किया। इसके मध्य में कोरणी की हुई पीले पत्थर पर करणीमाता की आकर्षक खड़ी मूर्ति स्थापित है। माता के सिर पर मुकुट और बायें हाथ में

ISBN: 978-93-93166-10-4

त्रिशूल हैं। जिसकी नोक में महिषा का सिर पिरोया हुआ है। दूसरे हाथ में नरमुण्ड लटका हुआ है। यह प्रतिमा वि. सं. 1595 की चैत्र शुक्ल 14 को अधिष्ठित की गयी थी। इस प्रतिमा की पीठ पर सोने का तोरण बना हुआ है तथा सिर पर सोने का छत्र निर्मित है। गुम्बारें की दीवार पर सोने के किवाड़ लगे है। गुम्बारें के उपर कच्ची इटों के मन्दिर का निर्माण बीकानेर के राव जेतसी नें हूमांयु के भाई कामरान पर भटनेर के युद्ध में विजय के उपलक्ष्य में करवाया था। इस मन्दिर के परकोर्टे तथा मुख्य प्रवेश द्वार का निर्माण महाराजा सूरज सिंह जी ने करवाया । महाराजा गंगा सिंह जी ने प्रवेश द्वार पर संगमरमर जड़वाया । इस पर हंस पर सवार सरस्वती, विश्राम मुद्रा में सिंह की आकृतियां, मस्त हाथी, योग मुद्रा में लीन साधु, प्रोल के किनारे पर चूहों की आकृतियां उकेरी हुई हैं।

मुख्य प्रवेश द्वार के अन्दर दायीं ओर चूहों के आवास और सुरक्षा के लिए जाल निर्मित है जिनके अन्दर काबा स्वतन्त्र विचरण करते है। इनको दूध पिलाने और मिठाई व अनाज खिलाने के लिए बर्तन स्थान-स्थान पर रखे हुए हैं। करणी माता को नियमित लापसी को भोग लगाया जाता है।

शिवबाड़ी

यह स्थान बीकानेर से लगभग 4 किमी दूर पूर्व में स्थित है। यह चारों ओर से सुदृढ़ दीवारों से घिरा हुआ है। इसके चारो कोनो पर चार बुर्ज हैं। मुख्य द्वार पूर्वाभिमुखी है तथा इस पर सुन्दर कमरे बने हुए हैं। मुख्य द्वार के अन्दर बिल्कुल सामने लम्बे-चौड़े ऊंचे चौक पर लाल पत्थर के बरामदे के बीचों-बीच सफेद संगमरमर का मुख्य मंदिर है। यह श्री लालेश्वर ज्योतिर्लिंग

ISBN: 978-93-93166-10-4

महादेव का मंदिर है जिसमें काले पत्थर की पंचमुखी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह मंदिर वि.सं. 1933 में महाराजा डूंगरसिंहजी ने अपने पिता महाराज लालसिंह जी की स्मृति में बनवाया था। मुख्य मंदिर के द्वार के पास की दीवार पर एक शिलालेख उत्कीर्ण है जिस पर बीकानेर नरेशों महाराज गजसिंह से महाराजा डूंगरसिंह तक की वंशावली दी हुई है। बरामदे का फर्श संगमरमर के श्वेत और काले चौकों से मिलकर बना हुआ है। मंदिर में सामने बरामदे में पश्चिमाभिमुखी बैठा हुआ पीतल का नंदी है जो लगभग 5 फुट लम्बा व 3 फुट ऊंचा है। जिसके नेत्र चांदी के बने प्रतीत होते हैं। मुख्य मंदिर के दरवाजे भी चांदी के बने हुए हैं। बरामदे की छत पर सुन्दर एवं आकर्षक चित्र बने हुए हैं।

इसी चौभीते में एक अन्य शिव मंदिर महाराजा डूंगरसिंह जी का बनवाया हुआ है जो डूंगरेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध है। श्रावण मास में सोमवार को विशेष तथा वर्ष के अन्य सोमवार को यहां श्रद्धालुओं की भीड़ रहती हैं।

कोलायत

बीकानेर से 50 कि.मी. दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित कोलायत एक प्राचीन तीर्थ स्थल है। जनश्रुति के अनुसार इस स्थल पर बह्मा के पौत्र व कर्दम ऋषि के पुत्र महर्षि कपिल ने सांख्य दर्शन का प्रतिपादन किया था। यहॉ एक विशाल जलाशय है जिसके किनारे कपिलमुनि का एक मन्दिर है। ऐसा कहा जाता है कि यहॉ कपिलमुनि का आश्रम था जहॉ उन्होने तपस्या की तथा अपनी माता को ज्ञान दिया था। यह मन्दिर 700 वर्ष पुराना है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

महर्षि कपिल मन्दिर के सामने उनकी माता देवहुति का मन्दिर बना हुआ है। बीकानेर के स्वर्गीय महाराज गंगासिंह जी ने मन्दिर में संगमरमर लगवाकर आकर्षक स्वरूप प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त उन्होने कोलायत जलाशय के चारों ओर पक्के घाटों का निर्माण करवाया तथा शिव, गणेश, गंगाजी, सूर्य आदि मन्दिरों का निर्माण भी करवाया । प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को यहॉ मेला लगता है। जिसमें देश के कोने-कोने से हजारों श्रद्धालु कपिल सरोवर में स्नान करने तथा कपिलमुनि के दर्शन करने आते है।

कोड़मदेसर

बीकानेर से 24 कि.मी. दूर पश्चिम में कोड़मदेसर एक प्राचीन तीर्थ स्थल है। यहॉ संगमरमर से निर्मित प्राचीन भैरव मन्दिर है। यह मन्दिर खुले आसमान के नीचे है। बहुत से भक्तों ने मन्दिर का भव्य निर्माण करवाने की कोशिश की, परन्तु यह कभी संभव नहीं हो पाया। बीकानेर नगर की स्थापना से पूर्व राव बीकाजी इसी स्थान पर करीब 3 वर्ष तक रहे। यहीं बीकाजी ने अपने इष्टदेव की मुर्ति प्रतिष्ठित की थी। मन्दिर के पीछे माता कोड़मदेवी द्वारा निर्मित एक तालाब है इस कारण इस गांव का नाम कोड़मदेसर पड़ा। यहॉ दो सती स्मारक भी है। यहॉ प्रतिवर्ष भाद्रपद मास की तेरस को मेला भरता है । जिसमें सभी जाति वर्ग के हजारों भक्त श्रद्धा से भाग लेते है।

मुकाम-

यह तीर्थ स्थल बीकानेर से 63 कि.मी. दूर नोखा तहसील के मुकाम गांव में स्थित है। यह बिश्नोई सम्प्रदाय का एक प्रमुख तथा पवित्र

ISBN: 978-93-93166-10-4

स्थल है। श्री जम्भेश्वर जी (जाम्भोजी) का जन्म सं. 1508 में पीपासर (नागौर) में हुआ, जो बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। जाम्भोजी की वि.सं. 1593 (1536 ई.) मार्गशीष बदी 9 को मृत्यु के बाद उन्हें तालवा गांव में एकादशी के दिन समाधि दी गई। उनके पवित्र शरीर का अन्तिम पड़ाव होने से तालवा गांव मुकाम के नाम से विख्यात हुआ। यहॉ पर मन्दिर जांभोजी के प्रिय शिष्य रणधीर जी बाबल ने 1540 ई. में बनवाया था। यहॉ फाल्गुन अमावस्या तथा आसोज अमावस्या में दो मेले भरते है। फाल्गुन अमावस्या मेला प्रारम्भ से ही चलता आ रहा है, परन्तु आसोज अमावस्या का मेला संत वील्होजी ने 1591 ई. में प्रारम्भ किया। यहॉ बिश्नोई समाज के लाखों "जातरी" (यात्री) धोक देने आते है।

गोगामैड़ी

यह हनुमानगढ़ जिले के नोहर तहसील में एक गांव है। गोगाजी के तीर्थ स्थलों में गोगामैड़ी व ददरेवा की मैड़ी प्रमुख है। ऐसी मान्यता है कि गोगाजी का शीश युद्ध करते समय कट कर ददरेवा में गिरा था, वे बिना शीश के धड़ से शत्रुओं के साथ लड़ते रहे और अन्त में उनका धड़ गोगामैड़ी नामक स्थान पर गिरा गया, वहीं उनकी समाधि तथा उसपर मन्दिर निर्मित किया गया। इसकी बनावट मकबरे के आकार की है, जिसके चारों कोणों पर ऊँची दीवारें है। मन्दिर के दरवाजे की ऊँचाई पर "बिस्मिल्ला" अंकित पत्थर लगा हुआ है। गोगामैड़ी का मुख्य द्वार पूर्वाभिमुखी है। मुख्य द्वार से सीढ़ियां चढ़ने पर विशाल प्रांगण आता है जिसके मध्य में चबूतरे पर चौकोर कमरेनुमा संगमरमर से निर्मित समाधि स्थल है । इसके सामने गोगाजी की उत्कीर्ण

ISBN: 978-93-93166-10-4

देवली है जिस पर गोगाजी घोड़े पर सवार दिखाये गये है। मैड़ी के मन्दिर के बाहर दक्षिण की ओर चौकी पर नारसिंह कुण्ड़ है। इसका अधिष्ठाता व पूजारी ब्राह्मण होता है। यहॉ भाद्रपद मास में कृष्णपक्ष व शुक्लपक्ष में दो मेले भरते है। इनमें दूर-दूर से हजारों श्रद्धालु आते है। मेले का झण्ड़ारोहण भाद्रपद लगते ही कर दिया जाता है। श्रद्धालुओं का आवागमन सप्तमी से शुरू हो जाता है। अष्टमी की रात्री को भक्तों का ठहराव गोरख टिलें पर रहता है। नवमीं की प्रातः सारा मेला गोगामैड़ी की ओर चल पड़ता है। जो भक्तगण 'निशान' व 'अखाड़ा' ले कर आते है वे गोगाजी की समाधि के सामने तरतंब से खड़े होकर ढ़ोल, झांझ बजाते है फिर मैड़ी की परिक्रमा करते है। ये अखाड़ वाले जब तक गोगामैड़ी में रहते है, तब तक ऐसा दिन में तीन बार करते है। गोगाजी की समाधि की आरती सुबह-शाम घृत ज्योति, नगाड़ा, घड़ियाल एवं शंख ध्वनी के साथ होती है। नवमीं की रात्री को गोगाजी का जागरण किया जाता है। तदुपरान्त मेला विसर्जित हो जाता है।

धुना श्री गोरखनाथ जी का मन्दिर

यह तीर्थ स्थल गोगामैड़ी से 2 कि.मी. दूर गोगाणा में स्थित है। इस तीर्थ स्थल में मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरख नाथ जी की धुनी (चिमनी) स्थित है। इसके अलावा यहॉ पर देवी भद्रकाली, श्री भैरूजी तथा शिव परिवार की मुर्तियां भी है। यहॉ हजारों श्रद्धालु दर्शनार्थ आते है।

सिल्ला माता मन्दिर

यह हनुमानगढ़ में लुप्त सरस्वती नदी के प्राचीन बहाव क्षेत्र पर स्थित है। ऐसी लोक मान्यता है कि मन्दिर में स्थापित माता जी का सिल्ल

ISBN: 978-93-93166-10-4

पत्थर घग्घर नदी में बहकर आया था। इस मन्दिर का निर्माण 18वीं शताब्दी में होना बताया जाता है। लोगों में विश्वास है कि माता के सिल्ल पीर पर जल व दुध चढ़ाने वाले के त्वचा सम्बन्धि सभी रोगों दूर हो जाते है। प्रत्येक गुरूवार को यहां मेला भरता है। इसमें हजारों श्रद्धालु माता के दर्शनार्थ आते है।

भद्रकाली मन्दिर

यह तीर्थ स्थल हनुमानगढ़ शहर से लगभग 7 कि.मी. दूर घग्घर नदी के तट पर स्थित है। यहॉ माँ दुर्गा के कई अवतारों में से एक अवतार भद्रकाली माता का मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण बीकानेर के महाराजा रामसिंह ने करवाया था। कालान्तर में बीकानेर के महाराजा गंगा सिंह ने इसे आधुनिक स्वरूप प्रदान करवाया । इस मन्दिर में लगभग ढ़ाई फीट ऊँची लाल पत्थर से निर्मित माता की मुर्ति प्रतिष्ठित है। यहॉ प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल अष्टमी व नवमीं को मेला भरता है। नवरात्रों में हजारों श्रद्धालु माता के दर्शन के लिए आते है।

ददरेवा

वीर चैहान राजपूत गोगाजी महाराज का जन्म चुरू जिले के ददरेवा नामक स्थान पर हुआ था इसलिए यह स्थान लोकतीर्थ के रूप में पूज्य है। राजस्थान के पांच प्रमुख लोकदेवताओं में से एक प्रमुख लोकदेवता गोगाजी है। इनके अन्य नाम 'जाहरपीर' तथा 'गोगापीर' भी है। हिन्दुओं के साथ-साथ कुछ मुसलमान वर्ग भी इनकों पूजते है। गोगाजी के पिता चौहानवंशी नरेश जेवर और माता बाछल दे थी। इनका समय विक्रम की 11वीं शताब्दी माना जाता है। ये विदेशी आक्रमणकारी महमूद गजनवी के

ISBN: 978-93-93166-10-4

समकालीन थे। गोगाजी की मुर्ति सदैव घोड़े पर सवार उत्कीर्ण होती है। यह सांपों के देवता माने जाते है। ऐसा माना जाता है कि गोगाजी की पूजा करने से सांप का जहर उतर जाता है। ददरेवा में गोगाजी का एक प्राचीन मन्दिर निर्मित है। वर्तमान में इसे आधुनिक स्वरूप प्रदान किया जा रहा है। मन्दिर का शिखर ऊँचा है। यहॉ पर एक प्राचीन व पूजनीय तालाब भी है।

मन्दिर तथा उसके आस-पास के स्थानों पर भाद्रपद वदि 9 व भाद्रपद सुदि 9 को गोगाजी की स्मृति में मेले भरते है। गोगा नवमीं को हजारों की संख्या में गोगाजी के भक्त ऊँचे-ऊँचे निशानों को बड़े उत्साहपूर्वक गाते-बजाते गोगामैड़ी तक ले जाते है। निशान के आगे जंगी, ढोल, डेरू और झांझ बजाते है, और सांपों को हाथो में लिए रहते है। ये लोग लोहे की सांखलों के गुच्छों को अपने हाथों में उठाकर अपने पीठ व सिर पर प्रहार करते हुए एक विशेष प्रकार का नृत्य करते है। यह नृत्य गोगामैड़ी के सम्मुख चरम पर होता है। नृत्य के बाद निशानों को गोगाजी की प्रतिमा के सम्मुख झुकाकर गोगाजी की जय जयकार की जाती है। तत्पश्चात् लोग उसी प्रकार गाते-बजाते लौट जाते है। भाद्रपद मेले के अतिरिक्त पूर्णिमा का मेला भी यहॉ लगता है जो ददरेवा से प्रारम्भ होकर गोगामैड़ी में समाप्त होता है।

सालासर हनुमान जी

यह तीर्थ चुरू जिले के सुजानगढ़ तहसील में स्थित है। यहॉ पर हनुमान जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर से सम्बन्धित एक कथा प्रचलित है- मोहनदासजी रूपायणी जो सालासर गांव से 16 मील दूर है, के रहने वाले थे। वे अपनी विधवा बहन व भांजे के साथ बहन के ससुराल सालासर में

ISBN: 978-93-93166-10-4

आकर रहने लगे। मोहनदासजी शुरू से ही विरक्त वृति वाले मनुष्य थे और हनुमान जी को अपना इष्ट मान कर उनकी पूजा करते थे। कहा जाता है कि आसौटा गाँव के जाट किसान को एक मुर्ति 1754 में खेत जुताई के दोरान जमीन से बाहर निकली मिली। जिसे वहॉ के ठाकुर ने सालसर भिजवाई, उधर मोहनदास जी स्वप्न में हनुमान जी द्वारा बताये अनुसार यह मुर्ति लेने चल पडे। पाबोलाब तालाब के पास ठाकुर के आदमी ने मुर्ति मोहनदास जी को दी और उन्होने सालसर लाकर इस मुर्ति की स्थापना वि.स. 1811 में श्रावण सुदि 10, रविवार को कर दी। इस मन्दिर का निर्माण सं. 1815 में हुआ। यह मन्दिर शिखरयुक्त है। इसके गर्भगृह में हनुमान जी की मूछों वाली प्रतिमा स्थापित है। मन्दिर का प्रदक्षिणा पथ चांदी की मुर्तियों से सुसज्जित है।

यहॉ प्रतिवर्ष चैत्र व कार्तिक पूर्णिमा को मेला भरता है। प्रति मंगलवार व शनिवार को हजारों की संख्या में श्रद्धालु बालाजी के दर्शनार्थ आते है। यहॉ नवविवाहित जोडें जात देने आते है तथा नवजात शिशुओं का चुड़ाकरण संस्कार भी किया जाता है। इन अवसरों पर दाल-बाटी-चूरमा व सवामणी करने वाला की भीड़ लगी रहती है। सालासर के पूर्व में एक कि.मी. दूर श्री हनुमान जी की माता अंजना देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। जो भक्त सालासर बालाजी के दर्शनार्थ आते है वे इस मन्दिर में अवश्य आते है।

अन्य तीर्थ स्थल

इस संभाग के चुरू जिले में द्रोणपुर, तोलीयासर, मलासी भी तीर्थ स्थल है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

तोलीयासर

सरदारशहर मार्ग पर एक तीर्थ स्थल है। यहॉ पर प्रसिद्ध भव्य भैरव मन्दिर है। यह मन्दिर सफेद संगमरमर से विशाल बना हुआ है। यहॉ बच्चों का मुण्डन करने, जात देने की प्रथा है। यहॉ प्रतिवर्ष अश्विन मास में मेला लगता है जिसमें हजारों की संख्या में लोग आकर मन्नोती मांगते है।

मलासी

सुजानगढ़ तहसील में एक गांव है जहॉ रिगटाल भैरव मन्दिर है। यहॉ भी प्रतिवर्ष अश्विन मास में मेला लगता है । शुक्लपक्ष के प्रत्येक रविवार को सैंकड़ों लोग यहॉ अपने बच्चों के बाल चढ़ाने आते है।

द्रोणपुर

सुजानगढ़ से 9 कि.मी. दूर गोपालपुरा स्थित है। महाभारत काल में गोपालपुरा द्रोणपुर के नाम से जाना जाता था। प्रचलित लोक कथाओं के अनुसार इस स्थान को गुरू द्रोणाचार्य ने बसाया था। यहॉ डुंगरात की पहाडी पर कालका माता तथा गणेश जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहॉ हजारों की संख्या में श्रद्धालु आते

ISBN: 978-93-93166-10-4

भारत में बौद्ध कला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दीप्ती देवांशी

शोधार्थी

ड्राइंग एंड पेंटिंग विभाग

श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय,

अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

हेमलता अग्रवाल

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा

चित्रकला विभाग

श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय,

अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

बौद्ध धर्म से ही बौद्ध कला का जन्म हुआ। यह हम सभी जानते हैं। शोधार्थी द्वारा लिखे गए लेख के अनुसार बौद्ध धर्म से तीनों कलाओं ने प्रगाढ़ता हासिल की है। चित्रकला में अजंता का काल (गुप्त काल) स्वर्ण काल कहा जाता है स्थापत्य में मौर्य काल मूर्ति कला में कुषाण काल (गांधार शैली) प्रमुख है। गांधार शैली की मूर्तियां विश्व में सबसे सुंदर कहीं जाती है

ISBN: 978-93-93166-10-4

लेख के अनुसार मध्य काल से लेकर आज तक हम बौद्ध कला का अनुसरण कर रहे हैं। यह सर्व विदित है कि बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में बौद्ध कलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, सभी की अपनी-अपनी भूमिका रही है। स्थापत्य में अशोक का काल स्वर्ण काल कहा जाता है। पोथी कला में पाल शैली उत्तम रही है। इसमें दो राजा महत्वपूर्ण है राजा महेंद्र पाल और धर्मपाल इन सभी राजाओं ने अपने-अपने तरीके से भगवान गौतम बुद्ध के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा का प्रदर्शन किया।

मुख्य शब्द- भगवान गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म एवं बौद्ध कला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, विभिन्न राजवंश, स्तूप।

प्रस्तावना-

अपने देश में बौद्ध धर्म का उदय ईसा पूर्व 6वीं शती में हुआ था और तभी से यह हमारे भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का एक न अलग होने वाला अंग बन गया है। हजारों वर्षों से पूरे भारत में हिंदू और बौद्ध विचार धाराओं का चमत्कारिक मिलन होता आया है और भारत के आर्थिक विकास व सांस्कृतिक प्रभुत्व में बौद्धों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। बौद्ध धर्म ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी से 8 वीं शताब्दी तक भारत में रहा। परंतु देशी- विदेशी धर्मों के खून खराबे हिंसक शक्तियों से लड़ते हुए बौद्ध धर्म भारत में 12वीं शताब्दी तक रहा और हिमालयी क्षेत्रों व प्रदेशों के बाद अन्य राज्यों में नहीं के बराबर हो गया। बीसवीं शताब्दी के मध्य सन 1956 में आधुनिक भारत के निर्माता और महामानव डॉक्टर भीमराव आंबेडकर द्वारा अपने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म अपनाकर बौद्ध धर्म को भारत में

ISBN: 978-93-93166-10-4

पुनर्जीवित किया। डॉक्टर भीमराव आंबेडकर जी के प्रभाव से एक सर्वेक्षण के अनुसार सन 1959 तक देश के करीब 2 करोड़ लोगों ने बौद्ध धर्म अपनाया था। बौद्ध धर्म के अनुसार धम्म जीवन की पवित्रता बनाए रखना व तथ्य ज्ञान को पूर्ण प्राप्त करना है। निर्वाण प्राप्त करना, तृष्णा का त्याग करना है। इसके बाद भी भगवान बुद्ध ने सभी संस्कारों को अनित्य बताया है भगवान बुद्ध के अनुसार धम्म यानी धर्म वही है जो सबके लिए ज्ञान के द्वार खोल दें और उन्होंने बताया कि केवल विद्वान होना ही काफी नहीं है। प्रकांड विद्वान वही है जो अपने ज्ञान की रोशनी से सभी को रोशन कर दें। इस पावन धर्म के अतिरिक्त इस धर्म से बौद्ध कला का उदय हुआ और भारत में बौद्ध कला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार हुई जिसके अनुसार स्थापत्य यानी कि भवन निर्माण कला चित्रकला मूर्तिकला विशेष रूप से वर्णित है। बौद्ध मूर्तिकला मुख्य तौर पर धर्म से संबंधित स्थापत्य हैं। चैत्य स्तूप व बिहार बौद्ध कला की ही देन है हम सबको। अमरावती, सांची, भरहुत, सारनाथ व कुशीनगर के अति प्राचीन स्तूप प्रसिद्ध है। नए स्तूपों मे धौली (उड़ीसा) वैशाली (बिहार) राजग्रह (बिहार) विश्व शांति के प्रतीक स्तूपों का निर्माण हुआ वहीं जापान के प्रसिद्ध बौद्ध प्रचारक फ्यूजी गुरु जी ने साधक बौद्ध भारत को सौंपे। 19 फरवरी 2004 को महा बोधि बोध गया, बिहार को वर्ल्ड हेरिटेज सूची में सम्मिलित किया गया। इसका अर्थ है कि अब यह विहार संसार के बौद्ध अनुयायियों की संपत्ति बन गया। अगर चैत्यो की बात की जाए तो कार्ल भाँजा चैत्य विश्व में प्रसिद्ध है। एलोरा पर्वत को काटकर जो तीन तीन मंजिले बनाए गए चैत्य हैं। उन गुफा मंदिरों को देखने के लिए

ISBN: 978-93-93166-10-4

दुनिया के कोने कोने से बौद्ध पर्यटक आते हैं। श्रावस्ती, कुशीनगर, वैशाली, सारनाथ, नालंदा आदि के उत्खनन में महा विहारों के अवशेष मिलते हैं। हम सभी जानते हैं कि पहाड़ों में कुएं नहीं होते हैं इसीलिए बरसात के पानी को ही इकठ्ठा व शुद्ध करके पूरे साल इसे ही पिया जाता था। पानी को एकत्रित करने के लिए पहाड़ों को काट छांट कर गहराई लिए हुए एक हौज बनाया जाता था और उसमें बरसात का पानी इकट्ठा किया जाता था। ऊपर से इसे एक गोल पत्थर से ढका जाता था जिससे कि इसमें कोई गंदगी या कूड़ा करकट ना गिरे और साल भर यह पानी पीने के लिए सुरक्षित रहें और यहां पर पानी पीने की, नहाने धोने की व हाथ पैर धोने की व्यवस्था अलग-अलग होती थी। चित्रकला के रूप में हमारे पास अजंता की गुफाएं हैं। यहां की चित्रकला एशिया से लेकर यूरोपीय देशों तक पहुंची जहां पर तुन्हवांग हमारी अजंता शैली से प्रभावित है। कई भाषाओं में लिखित व रचित बौद्ध साहित्य व आयुर्वेद के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ मिले हैं यह सब नालंदा विश्वविद्यालय की देन है और बौद्ध सम्पतियाँ भी है।

रूस और चीन की सीमा रेखा के नजदीक तुन्हवांग नाम की एक रमणीक मनोहारी पहाड़ी थी वहां पर भिक्षुको ने अजंता जैसी चित्रकला और भारत के नालंदा जैसा एक विश्वविद्यालय बनाया था। खुदाई में यहां से कपड़े पर हस्तलिखित बौद्ध शास्त्र और आयुर्वेद के कई ग्रंथ अधिक मात्रा में मिले हैं।

यह पांडुलिपियाँ कई भाषाओं में लिखी गई है। जिनके ऊपर कई देशों के विद्वान खोज करने में लगे हुए हैं। भारत में बौद्ध कला की

ISBN: 978-93-93166-10-4

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में लुम्बनी (बुद्ध जन्मभूमि), बोधगया (ज्ञान प्राप्ति), सारनाथ (प्रथम उपदेश), कुशीनगर (महापरिनिर्वाण स्थल) ये चार महान तीर्थ है। इनके अतिरिक्त संकिसा (जिला फर्रुखाबाद), कौशांबी (इलाहाबाद के पास), वैशाली (बिहार), श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश) नागपुर (महाराष्ट्र) भी प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ है। इन सभी बौद्ध धार्मिक जगहों पर सभी जातियों, धर्मों के जन एकत्रित होते हैं और श्रद्धा भक्ति समर्पित करते हैं। मूर्ति कला के क्षेत्र में महान आत्मा भगवान बुद्ध की ऐतिहासिक मूर्तियां इस जगत में सर्वश्रेष्ठ मानी गई हैं। इनमें सारनाथ की "धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा" जो उपदेश देती हुई बुद्ध की मूर्ति है। सारनाथ के पुरातत्व संग्रहालय में दर्शनार्थियों के लिए सुरक्षित हैं। दूसरी वाली मूर्ति जो खड़ी हुई "अभय मुद्रा" में मथुरा संग्रहालय में रखी हुई हैं। तीसरी वाली खड़ी हुई बुद्ध प्रतिमा हमारे भारत के राष्ट्रपति भवन की शोभा बढ़ा रही है। यह तीनों मूर्तियां गुप्त काल की है और मथुरा में बनकर तैयार हुई थी। उस वक्त मथुरा एक प्रसिद्ध बौद्ध कला केंद्र था और वहां की भूमि पर भगवान बुद्ध कम से कम 2 बार पधारे थे। मथुरा में कई जगहों पर खनन का काम हुआ तो वहां से हमें 28 बौद्ध स्थल अभिलेखों सहित प्राप्त हुए हैं प्राप्त हुई मूर्तियों के अलावा भगवान बुद्ध की महापरिनिर्वाण वाली मूर्ति (कुशीनगर) भी मथुरा में बनी है। मथुरा शहर में कुछ वर्ष पहले एक कॉलोनी में घर की नींव खोदते समय भगवान बुद्ध की मूर्तियां बड़ी भारी मात्रा में मिली है। इसी प्रकार भारत के इतिहास में बौद्ध कला का स्वर्णिम अध्याय जो कहा जाता है वह सम्राट अशोक का काल (स्थापत्य कला) कहा जाता है। इन्होने भगवान बुद्ध के प्रति सच्ची श्रद्धा

ISBN: 978-93-93166-10-4

रखते हुए इस धर्म को स्थापत्य कला के तहत हर जन तक पहुंचाया। इनके द्वारा बनाए गए स्तंभ, शिलालेख, अभिलेख दर्शनीय है। इनके द्वारा बनवाए गए सारनाथ का सिंह शीर्ष स्तंभ विश्व प्रसिद्ध है जो (एकाश्म) है, एक ही पत्थर से निर्मित व लाल बलुये पत्थर से बना है मौर्य कला की विशिष्ट पहचान चमकदार पॉलिश इन के ऊपर की गई है जो बहुत ही पुराने काल की कला साम्रगी थी वह आज उपलब्ध नहीं है क्योंकि ज्यादातर लकड़ी व मिट्टी पर बनाई जाती थी जिससे वे थोड़े समय के बाद खत्म हो जाती थी। इसलिए इस काम के लिए पत्थर का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ था। क्योंकि यह नष्ट व खराब नहीं हो सकता था। भगवान बुद्ध से अगाध श्रद्धा होने के कारण महान सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध के धर्म का प्रचार हमेशा के लिए जीवित कर दिया या अमर कर दिया। सर्वप्रथम पाषाण का प्रयोग करने वाले शासक एकमात्र सम्राट अशोक ही थे। सम्राट अशोक के अभिलेखों से पता चलता है कि उन्होंने पाषाण का प्रयोग क्यों किया था ताकि भगवान बुद्ध और उनके धर्म सिद्धांत हमेशा के लिए अमर हो जाए। उसी प्रकार सम्राट अशोक से पहले के साम्राज्यों में भी बौद्ध कला का विकास हुआ था। जब भी अलग अलग संस्कृतियां आपस में मिली तब तब मनुष्य का जीवन व संसार ऊपर उठा। हमारे देश में ईरानियों का शासन बहुत लंबे समय तक सिंध व पंजाब पर रहा था। सम्राट अशोक से पहले (कुछ काल पहले) का समय ईरानियों का शासन था ईरान सुंदर मूर्तियां बनाने में संसार में अग्रणी स्थान पर था इनकी मूर्तियों में शेरों व सांडों की मूर्तियां हैं। इन पर शीशे जैसी चमक हैं इनके जैसी चमक सम्राट अशोक की लाट में दिखाई देती है। इरानी शासक

ISBN: 978-93-93166-10-4

दारा की तरह अशोक ने भी अपने लेख पत्थरो पर खुदवाये और स्तंभो पर भी, जहां दारा ने अपने जमाने की खूनी लड़ाईयां अपना महिमामंडन लिखवाया वही सम्राट अशोक ने अगाध स्नेह व अहिंसा के संदेश उकेरवाये। उसी प्रकार बौद्ध कला की प्रगति शुंग राजवंश में भी खूब हुई। उत्तर में पुष्य मित्र शुंग का और दक्षिण में आंध्र सात वाहनों का। अपितु दोनों ने ही कला को बहुत आगे बढ़ाया। शुंग काल में भरहुत व सांची के स्तूप बने जो सुंदर कढ़ाई युक्त है और आन्ध्रों ने अपने काल में नासिक में गुफाएं खुदवाई थी, मूर्तियां जो की खड़ी हुई अवस्था में है। मनोहारी है ऊंचे स्तंभ भी बनवाए गए इन राजवंशों में जितनी सुंदर मूर्तियां, चित्र, स्तम्भ आदि बने उतने ही मनभावन और सुंदर (मिट्टी) के खिलौने भी बने। बंगाल में पाल राजवंश ने पोती चित्रण से भगवान बुद्ध के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की। शुंग काल के समय ही यूनानीयों ने पंजाब पर अपना कब्जा जमा लिया और दो सौ वर्षों तक शासन किया वहां रहकर यूनानीयों ने अपनी संस्कृति का विस्तार किया अपनी नाट्य मंडलियाँ आयोजित की इन सब चीजों से जो मूर्ति बनी उसी को हम गंधार कला के नाम से जानते हैं। जोकि कुषाण वंश की देन है कुषाण वंश ने भी हमारी भारतीय संस्कृति और कला को खूब पोषित किया। हमारे भारत के मथुरा और लखनऊ के संग्रहालय इस राजवंश की कलाकृतियों से भरे पड़े हैं हम बताते चलें कि कुषाण वंश के राजा कनिष्क ने बौद्ध धर्म अपना लिया था। इस तरह से यह देसी विदेशी कलाओं का मेल था। एक तरफ मथुरा शैली पूर्ण रूप से भारतीयता लिए हुई थी वहीं दूसरी तरफ यूनानी शैली (गांधार शैली) मे एक देवता की तरह भगवान

ISBN: 978-93-93166-10-4

बुद्ध को दिखाया गया है। भारत में बौद्ध कला का वैभव गुप्त कला की चौथी से छठी सदी ईस्वी तक रहा इसी समय में यह विश्वविख्यात होता चला गया और भारत में भी यह प्रमुखता से अग्रणी रहा। बौद्ध धर्म व कला शालीनता व सौंदर्य बोध लिए हुए सुसज्जित थी। मथुरा के बलुआ गुलाबी पत्थर की मूर्तियां निष्पादन व कोमलता की पराकाष्ठा तक पहुंचने में कामयाब हुई। गुप्त काल की शैली संपूर्ण एशिया महाद्वीप में अत्यधिक प्रभावशाली रही। देश में प्रारंभिक बौद्ध कला के अवशेष दुर्लभतम है। अजंता गुफाओं के बाद के समय में ज्यादातर जीवित कार्य बनाए गए है यह लगभग 480 सी ई तक थोड़े कम समय में बने थे यह बहुत ही सुंदर ढंग से निर्मित हुए जो कि एक विकसित शैली में बने थे। सांची में एक जैसे ही बहुत से स्तूप हैं जो भगवान बुद्ध के चिन्ह प्रतीक आदि से सजाए गए हैं। स्तंभों पर भी कारीगरी की गई है।

यह भारत में बौद्ध कला के शुरुआती उदाहरण है। भरहुत की मूर्तियों में भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित चित्र कहानियां उकेरी गई है। सांची भरहुत अमरावती की मूर्ति कला में बोधि वृक्ष पूजा अवश्य दिखाई गई है जिससे यह प्रतीत होता है कि बोधि वृक्ष बहुत ही पूजनीय था। दक्षिण भारत में सबसे महत्वपूर्ण अमरावती महाचैत्य है जिसका रूप भरहुत की बौद्ध कला से मेल खाता है। अमरावती महाचैत्य स्तूप में भगवान बुद्ध को महामानव व भव्य पुरुष के रूप में दर्शाया गया है। भारत की पहचान है बौद्ध कला अजंता की गुफाओं में भगवान बुद्ध के जीवन काल का वर्णन विस्तार पूर्वक बताया गया है व एलोरा में भगवान बुद्ध और बौधिसत्व की मूर्तियां

ISBN: 978-93-93166-10-4

विराजमान है। सातवीं शती में भारत पर हूणो के आक्रमण से भारत के उत्तरी क्षेत्र से यह बौद्ध कला शनै शनै विलुप्त हो गई। सिर्फ भारत के बंगाल और नालंदा बिहार में ही इसके थोड़े बहुत निशां रह गए। देश में अपनी बौद्ध कला के अंतिम चरण का विस्तार केवल दो राजवंशों ने ही संभाला था वह थे पाल व सेन राजवंश भारतवर्ष में बौद्ध धर्म व बौद्ध कला का अंतिम और महत्वपूर्ण स्थल बिहार राज्य का नालंदा विश्वविद्यालय था। भवन निर्माण व विश्वविद्यालय बनाने की एक वस्तु कला शैली का ज्ञान प्राप्त हुआ जिससे पता चलता है कि जो शैली गुप्त राजवंश ने चलाई थी वह वास्तुकला शैली नालंदा विश्वविद्यालय तक निरंतर बहती रही।

भगवान बुद्ध के इस समता सभी को साथ लेकर चलने वाले, सभी प्राणियों का सम्मान करना, समान अधिकार, सभी को एक समान जीने का हक, जीव जंतुओं की देखभाल करना, असहाय गरीब, बच्चे, बूढ़े आदि को समान रूप से प्यार करना सिखाने वाले इस धर्म व बौद्ध कला का अंतिम पड़ाव बंगाल में आक्रमणकारियों द्वारा धर्म व कला के नाश करने के बावजूद फला-फूला। इस प्रकार भारत में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाली बौद्ध कला और धर्म अपनी वाम गति से बारहवी शताब्दी आते-आते समाप्ति की ओर बढ़ गयी परंतु भारत से बाहर इसने अपनी जड़ें फैला दी थी और जिस प्रकार यह भारत में शनै-शनै समाप्त हुआ उसी प्रकार यह विदेशों में फैलता गया।

अध्ययन का उद्देश्य- लेखक ने बताया है कि जिस प्रकार प्राचीन काल में विभिन्न राजवंशों ने भगवान गौतम बुद्ध को कला के द्वारा पूरे विश्व में पहुंचाया और उनका महिमामंडन किया उसी प्रकार मेरा भी कर्तव्य बनता है कि

ISBN: 978-93-93166-10-4

शोधार्थी के इस लेख के द्वारा भावी पीढ़ी इसका लाभ उठाएं और अपने ज्ञान को विस्तृत करें और अपने भारत की इस बौद्ध कला के प्रति अपनी उत्सुकता व श्रद्धा बनाए रखें यही शोधार्थी का उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन-

गैरोला वाचस्पति (2006) "भारतीय संस्कृति और कला"

इन्होंने अपनी पुस्तक में मथुरा से प्राप्त भगवान बुद्ध से संबंधित मूर्तियों के बारे में विस्तार से बताया है जैसे मौर्यकाल की यक्ष की प्रतिमाएं जो बौद्ध के समय में भी पूजी जाती थी और जैन धर्म में भी इनकी पूजा होती थी भगवान बुद्ध की एक प्रतिमा जो लाल बलुआ पत्थर की बनी है इस मूर्ति में लेखक ने भगवान बुद्ध के आशीर्वाद वाली मुद्रा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है भगवान बुद्ध से संबंधित मूर्ति कला एवं स्थापत्य कला के बारे में लिखा है।

पांडे के ऐस "प्राचीन भारत" मूर्ति कला और स्थापत्य कला

लेखक महोदय ने अपनी इस पुस्तक में मौर्य राजवंश के द्वारा भगवान गौतम बुद्ध के प्रति उनकी (सम्राट अशोक) की सच्ची श्रद्धांजलि को व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है की सम्राट अशोक द्वारा इस पवित्र धर्म को भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में जन जन तक पहुंचाने का श्रेय जाता है मूर्ति कला और चित्र कला के द्वारा यह सब मुमकिन हो सका।

निष्कर्ष-

बौद्ध धर्म और बौद्ध कला हमारे भारत की सांस्कृतिक विरासत है। इसके होने से ही भारत का सुंदर इतिहास है। जो सदियों से संजोते आ रहे हैं हम। भगवान बुद्ध इस संपूर्ण एशिया के ज्ञान भंडार के प्रकाश पुंज कहे जाते

ISBN: 978-93-93166-10-4

हैं। ऐतिहासिक काल में राजाओं ने अपने अपने तरीकों से इस धर्म व कला को प्रचारित प्रसारित किया। इस प्रकार इस पवित्र कला व धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हुए इस समय में भी बौद्ध कला से प्रेरणा लेकर भारतीय कला ही नहीं अपितु विश्व की कलाएं आगे बढ़ रही हैं। नित नए शोध इस कला पर हो रहे हैं और आने वाली पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। देशी विदेशी लोग इनकी कला, तकनीकी, गुफाओं, चित्र, म्यूरल आदि पर खोज में लगे रहते हैं। शोध पत्र द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है।

सन्दर्भ गन्थ सूची

1. पाण्डे के एस "प्राचीन भारत" पृष्ठ सं 305
2. गैरोला वाचस्पति "भारतीय संस्कृति और कला" पृष्ठ सं 253-258 तक।
3. उपाध्याय भगवत शरण "भारतीय संस्कृति की कहानी"
Website
http://www.wisdomindia.news
https://www.gktoday.in
https://www.hmoob.in
https://www.mpgkpdf.com

ISBN: 978-93-93166-10-4

बुद्ध के मूल सिद्धान्त

डा0 सुनीता सिंह
संस्कृत विभाग
यूथ गर्ल्स डिग्री कालेज,
बाराबंकी, भारत

सारांश

प्रत्येक धर्म का आधार कोई न कोई दर्शन होता है। धर्म का महत्व भवन दर्शन की नींव पर खड़ा होता है। बौद्ध-धर्म का आधार भी कुछ दार्शनिक सिद्धान्त है। गौतम बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया, बुद्ध ने जो भी सार तत्व अनुभव किया उसे उपदेशो के माध्यम से अनुयायियो को दिया गौतम बुद्ध ने जो भी दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित किए और जो भी शिक्षाएं दी वे आज भारत ही नहीं, विश्व के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण अमूल्य निधियाँ है।'[1]

मुख्य शब्द- बुद्ध के मूल सिद्धान्त, आत्मा व जगत, दर्शन।

उददेश्य

बुद्ध ने आत्मा व जगत् का अत्यन्त स्पष्ट रूप से विवेचन किया है। दर्शनशास्त्र प्राणियों की जिज्ञासाओं को शान्त करने का उपचार है। वस्तुतः क्या, क्यों और कैसे? इन्हीं जिज्ञासाओं ने दर्शन-शास्त्र को जन्म दिया है। बुद्ध ने जगत् व आत्मा के सम्बन्ध में विचारों को प्रकट किया है। उन्हें हम इस

ISBN: 978-93-93166-10-4

प्रकार जान सकते है:-

1- ईश्वर नही है।

2- आत्मा अनित्य है।

3- ग्रन्थ अपौरूषेय या स्वतः प्रमाण नहीं है।

4- जीवन केवल शरीर की परिधा में नहीं है।

प्रथम तीन सिद्धान्त नकारात्मक और अन्तिम एक स्वीकारात्मक है।'[2]

प्रतीत्यसमुत्पाद-

इसका अर्थ है 'प्राप्त होकर प्रादुर्भाव' अर्थात् इसके होने पर वह होता है। इसकी उत्पत्ति से उसकी उत्पत्ति होती है। दुःख कैसे उत्पन्न होता है- यह ज्ञान दुःख को दूर करने के लिए आवश्यक होता है, यही प्रतीत्य-समुत्पाद होता है।

बुद्ध ने वैदिक ईश्वर वादी सिद्धान्त को उलट दिया। बुद्ध ने प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धान्त के द्वारा ईश्वर की अस्थिति को स्पष्ट कर दिया है। प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धान्त के अनुसार एक वस्तु का विनाश होने पर ही दूसरी वस्तु का निर्माण होता है। ईश्वर को जगत् का उत्पादन कारण नहीं माना जा सकता, क्योंकि फिर जगत् के भले-बुरे सभी कर्म ईश्वर में भी होने चाहिए। जबकि ईश्वर असल निर्विकार और गुण दोषों से रहित है। यदि ईश्वर को निमित्तकारण माना जाय तो उपादान का होना आवश्यक है। जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़े को बनाता है, कुम्हार निमित्त कारण, मिट्टी उपादान कारण और जगत कार्य है तो ईश्वर निमित्त होने पर जगत का उपादान कारण कुछ भी ज्ञात नहीं होता। बिना उपादान कारण के कार्य सम्भव नहीं। यदि उपादान

ISBN: 978-93-93166-10-4

कारण को न माने तो अभाव से भाव की उत्पत्ति माननी चाहिए और कारण कार्य मिथ्या सिद्ध हो जाता है। यही प्रतीत समुत्पाद होता है। इसके निम्नलिखित 12 अंग हैः-'[3]

1- अविधा

2- संस्कार

3- विज्ञान

4- नामरूप

5- षड़ायतन

6- स्पर्श

7- वेदना

8- तृष्णा

9- उपादान

10- भव

11- जाति

12- जरामरण

1. अविधा- जो दुःख को नहीं जानता है दुःख समुदाय को नहीं जानता, दुख निरोध व दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा को नहीं जानता है उसे अविधा कहते है इस अविधा के हट जाने या रूक जाने से संस्कार नहीं उत्पन्न हो पाते इस तरह सारा दुःख समूह रूक जाता है।'[4]

2. संस्कार - यह पूर्व जन्म की कर्मावस्था होती है। संस्कार को तीन भागों में विभक्त किया है यथा- कार्य संस्कार, वाक् संस्कार, चित्त संस्कार।'[5]

ISBN: 978-93-93166-10-4

3. विज्ञान - प्रति सन्धि- क्षण में कुक्षि के जो पच्च संघ होते है वही विज्ञान है।'[6]

4. नाम रूप - वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये नाम कहलाते है और चार महा भूतों को लेकर जो रूप होता है। उसे रूप कहते है। इस तरह यह नाम रूप कहलाता है।'[7]

5. षड़ायतन - चक्षु आयतन श्रोत्र आयतन, घ्राण आयतन, जिह्वा आयतन, कार्य आयतन, मन आयतन आदि को षडायतन कहते है।'[8]

6. स्पर्श - चक्षु संस्पर्श, श्रोत्र संस्पर्श, घ्राण संस्पर्श , जिह्वा संस्पर्श , काया संस्पर्श, मन संस्पर्श आदि को स्पर्श कहते है।'[9]

7. वेदना - चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन आदि के संस्पर्श से होने वाली वेदना को वेदना कहते है।'[10]

8. तृष्णा - भोग व मैथुन की कामना करना ही तृष्णा। रूप, काम, गुण और मैथुन के प्रति राग उत्पन्न होता है। भोगो की पर्येष्टि प्रारम्भ करने से ही तृष्णा नष्ट होती है।'[11]

9. उपादान- काम उपादान, मिथ्या दृष्टि उपादान शील व्रत उपादान, आत्मवाद उपादान आदि को उपादान करते है।'[12]

10. भव - काम भव, रूप भव, अरूप भव को ही भव कहते है। या फिर जीव का किसी अवस्था में कर्म करना ही भव है।'[13]

11. जाति- जो उन जीवों के उन योनियों में जन्म लेना, पैदा हो जाना, चला आना आकर प्रकट हो जाना, स्कन्धों का प्रादुभाव होना, आयतनों का प्रतिलाभ करना ही जाति कहलाती है।'[14]

ISBN: 978-93-93166-10-4

12. जरामरण - जो उन-उन जीवो के उन-उन योनियों में बूढ़ा हो जाना, पुराना हो जाना दाँतो का टूट जाना, बाल सफेद हो जाना, झुर्रिया पड़जाना, उम्र का खात्मा और इन्द्रियों का शिथिल हो जाना आदि ही जरा कहलाता है। जो उन-उन जीवो के उन-उन योनियों से खिसक जाना, कट जाना, अन्तर्धान हो जाना, मृत्यु-मरण, स्कन्धों का छिन्न-भिन्न हो जाना, चोला को छोड़ देना ही मरण कहते है। इस प्रकार जरामरण कहलाता है।'[15]

निष्कर्ष-

इस प्रकार उपयुक्त सिद्धान्त से बौद्ध दर्शन का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है कि यह सिद्धान्त बुद्ध की शिक्षा और दर्शन पर अवलम्बित है यह पहला सिद्धान्त बौध धर्म को दुनिया के अन्य धर्मों से पृथक करते है और बड़ी परतन्त्रताओ से मनुष्य को मुक्त करते है। वही बुद्ध धर्म है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पालि साहित्य का इतिहास डा0 प्रभा अग्रवाल पेज-56*
2. *मज्झिम निकाय महापंडित राहुल सांकृत्यायन पृष्ठ 1⁄4भूमिका से1⁄2*
3. *पालि साहित्य का इतिहास डा0 प्रभा अग्रवाल पृष्ठ 116, 117*
4. *संयुक्त निकाय द्वितीय भाग पृष्ठ 4 सम्पादक- भिक्षु जगदीश कश्यप*
5. *संयुक्त निकाय द्वितीय भाग पृष्ठ 4*
6. *पा0सा0 इति पृष्ठ 117 1⁄4डा0 प्रभा अग्रवाल1⁄2*
7. *संयु0नि0 द्वि0 भाग पृष्ठ 4*
8. *संयु0 नि0 द्वि0 भा0 पृ0 4*
9. *स0 नि0 द्वि0 भा0 पृ0 4*
10. *स0 नि0 द्वि0 भा0 पृ0 4*
11. *पालि साहित्य का इतिहास डा0 प्रभा अग्रवाल पृ0 117*
12. *स0 नि0 द्वि0 भा0 पृ0 4*
13. *पा0 लि0 पृष्ठ 117 1⁄4डा0 प्रभा अग्रवाल1⁄2*
14. *संयु0 नि0 द्वि0 भा0 पृष्ठ 4*
15. *संयु0 नि0 द्वि0 भा0 पृष्ठ 4*

ISBN: 978-93-93166-10-4

भारत में बौद्ध धर्म का विघटनः ऐतिहासिक दृष्टिकोण

पिंकी यादव

सह आचार्य,

इतिहास विभाग,

राजकीय कला महाविद्यालय,

कोटा, राजस्थान, भारत

सारांश

भारत में बौद्ध धर्म का उदय ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में हुआ और तब से यह भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का एक अभिन्न अंग बन गया है। वर्षों से, सम्पूर्ण भारत में हिन्दु और बौद्ध संस्कृतियों का एक अद्भुत मिलन होता आया है और भारत के आर्थिक उदय और सांस्कृतिक प्रभुत्व में बौद्धों ने महती भूमिका निभाई है। बौद्ध धर्म का विघटन के लिए किसी एक कारण को उŸारदायी नहीं माना जा सकता, इसके लिए समय-समय पर उपस्थित विभिन्न परिस्थितियाँ उŸारदायी थी। जिसके कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव भारत से शनैः शनैः कम होने लगा। जिसके कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव भारत से शनैः शनैः कम होने लगा। इनमें प्रमुख थी परम्परागत रूप से

ISBN: 978-93-93166-10-4

आ रही ब्राह्मण-व्यवस्था का बुद्ध द्वारा विरोध। जिसके कारण यह धर्म भारत में पैर नहीं जमा सका। बुद्ध के काल में इस धर्म को अभूतपूर्व सफलता इसलिए मिली कि उनके उपदेश और सिद्धान्त अत्यंत सरल और सुगम थे तथा पीड़ित जनता के लिए अत्यधिक आकर्षक। धर्म के नैतिक और व्यावहारिक आचारों में क्लिष्टता नहीं थी। किन्तु उनकी मृत्यु के बाद बौद्ध धर्म में दुरूहता और जटिलता आती गई, जिससे साधारण वर्ग को कठिनाइयों का अनुभव हुआ। कालान्तर में हिन्दू धर्म के सरल और सुबोध आचरण के कारण भी बौद्ध धर्म बहुत पीछे रह गया। फलतः बौद्ध धर्म का ह्रास स्वतः प्रारम्भ हो गया जो कालान्तर में चलकर और त्वरित गति से हुआ।

मुख्य शब्द- बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म, नैतिक और व्यावहारिक आचार।

प्रस्तावना-

बौद्ध धर्म के पतन को लेकर आधुनिक विद्वानों में इतना मतभेद है कि यदि एक ओर कुछ विद्वानों ने पतन के आरम्भ को बुद्ध के ही काल में रखा है[1] तो वही दूसरी ओर कुछ अन्य विद्वानों के विचार में पतन के आरम्भ को सातवीं शताब्दी से पहले नहीं रखा जा सकता।[2] जहाँ कुछ विद्वानों ने बौद्ध धर्म के पतन को 'केवल वार्द्धव्य या पूर्ण परिक्लानित'[3] के संदर्भ में व्यक्त किया है, वहीं दूसरे विद्वान यह अनुभव करते हैं कि पतन के पीछे उन विभिन्न कारणों की विविधता थी जो निस्संदेह बड़े लम्बे समय से कार्य कर रहे होंगे।[4] तथापि, इस बात पर आम सहमति है कि पतन के आरम्भ का समय जो भी रहा हो, 12वीं शताब्दी के अन्त के करीब यह बड़ी तीव्रता और व्यापक रूप से घटित हुआ। पांचवीं शती के प्रथम चरण में फाँहियान को

ISBN: 978-93-93166-10-4

बौद्ध धर्म अपनी उत्कर्षावस्था में दिखाई पड़ा था, किन्तु सातवीं शती के पूर्वार्ध में युवांच्वांग (ह्वेन-सांग) की दृष्टि में वह अवनति के मार्ग पर अग्रसर हो रहा था। आठवीं शती के आरम्भ में बौद्ध धर्म की अधिक अवनति हो चुकी थी, जैसा कि इत्सिंग का अभिवचन हैं।

भारत में बौद्ध धर्म का विघटन

प्रो. के.डब्ल्यू मार्गन जैसे हाल के लेखकों का कथन है कि बौद्ध धर्म के अपकर्ष के कारण थे-संघ की शक्ति का ह्रास, मुस्लिम आक्रमण एवं हिन्दू जनता का विरोध। श्री ए. कुमारस्वामी के इस कथन में पर्याप्त सत्यता प्रतीत होती है कि बौद्ध धर्म एवं ब्राह्मण धर्म का जितना गम्भीर अध्ययन किया जाए उतना ही दोनों के बीच अन्तर जानना कठिन हो जाता है या यह कहना कठिन हो जाता है कि किन रूपों में बौद्ध धर्म, वास्तव में अशास्त्रीय या अहिन्दू है। बुद्ध एवं उनके उत्तराधिकारी अनुयायियों ने ब्राह्मण धर्म की कुछ लोक प्रचलित मान्यताओं पर ही आक्रमण किया था। राइज डेविड्स महोदय[5] ने अपने 'दि रिलेशन बिटवीन अर्ली बुद्धिज्म एवं ब्राह्मणीज्म' नामक भाषण में यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि त्रिपिटकों से यह नहीं प्रकट होता है कि उनका ब्राह्मणों से कोई विरोध था और बुद्ध ने वही कहा जो उन दिनों के ब्राह्मणवाद के प्रमुख तत्वों में विद्यमान थे। बुद्ध ने उपनिषदों की उस शिक्षा को स्वीकार किया कि ब्रह्मानन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए नैतिक आचरण अति उच्च होना चाहिए।

कुछ विद्वानों ने शासकीय उत्पीड़न को मुख्य कारणों में एक कारण माना है।[6] शुँगवंश के पुष्यमित्र पर ऐसा अभियोग लगाया गया है, उसने

ISBN: 978-93-93166-10-4

ऐसी उद्घोषणा की थी कि जो कोई किसी श्रवण का सिर लायेगा वह एक सौ दीनार पायेगा। कश्मीर के राजा मिहिर कुल को युवाँच्वाँग (अथवा ह्वेनसांग जैसे कुछ विद्वान लिखते हैं) ने उत्पीड़क कहा है और लिखा है कि उसने गंधार में बौद्ध स्तूपों को गिरा दिया, उसने मठों एवं सैकड़ों बौद्धों को मार डाला। युवाँच्वाँग ने लिखा है कि राजा शशांक ने बोधिवृक्ष का उच्छेद कर दिया, बुद्ध प्रतिमा के स्थान पर महेश्वर की प्रतिमा रख दी तथा बुद्ध के धर्म का नाश किया, कुमारिल के कहने पर राजा सुधन्वा ने एक अनुशासन निकाला कि हिमालय से लेकर कुमारी-अन्तरीप तक (जो सर्वथा असंगत है) अपने उस नौकर को, जो बौद्धों की हत्या नहीं करेगा, मार डालूंगा।[7]

कुछ विद्वान संघ के अन्दर के भेद और विवादों को पतन का कारण मानते हैं। 7वीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म एक विभाजित घर जैसा बन चुका था। संघ-भेद को स्वयं बुद्ध ने पाँच मुख्य पापों में से एक माना था। बौद्धों के विभिन्न सम्प्रदाय आपस में उसी तरह लड़ते थे जिस तरह बौद्धेतर लोगों से लड़ते थे। चार्ल्स ऐलियट यह अनुभव करते है कि "हीनयान की अपेक्षा महायान के भ्रष्टाचारों के कारण बौद्ध धर्म का भारत में पतन हुआ।"[8]

कुछ विद्वान यह समझते हैं कि मुस्लिम आक्रमण बौद्ध धर्म के भारत की मुख्य भूमि से विलुप्त होने का मुख्य कारण थे। लगभग 1200 ई. में एवं उसके उपरान्त नालंदा एवं विक्रमशीला जैसे विश्वविद्यालय नष्ट कर डाले गये। बोधगया को भी तोड़ा-फोड़ा गया और अधिक संख्या में निर्दयतापूर्वक भिक्षु मार डाले गये। जो लोग इस प्रकार के संहार से बच गये

ISBN: 978-93-93166-10-4

वे तिब्बत या नेपाल में भाग गये।[9] जहाँ बख्त्यिार खिलजी के अत्याचार का वर्णन है, जो तबाकत-ए-नासिरी से लिया गया है। उसमें लिखा है कि बख्तियार खिलजी अपनी सेना लेकर बिहार गया और वहाँ लूटपाट की, उसके हाथ में प्रभूत सम्पत्ति पड़ी, वहाँ के निवासी अधिकतर ब्राह्मण थे, जिनकी सिर मुण्डित थे, वे मार डाले गये, बहुत सी पुस्तकें पायी गयी और ऐसा माना गया कि सम्पूर्ण स्थान एक अध्ययन का नगर था। इस वर्णन से प्रकट होता है कि मुण्डित सिर ब्राह्मण बौद्ध भिक्षु थे। जब 1325 ई. में पुनः नालन्दा पर आक्रमण हुआ तो इसके 70 छात्र असहाय और बूढ़े आचार्य राहुलभट्ट को छोड़कर भाग खड़े हुए। धर्मस्वामिन ने इस बूढ़े भिक्षु को अपने कंधे पर रखकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। बौद्ध संस्थानों को लूटकर जला डाला गया और मठीय बौद्ध धर्म को मिटा दिया गया।

जब मुसलमान आक्रमण से भिक्षुओं का विनाश हो गया तो सामान्य जनता किंकर्त्तव्य विमूढ हो गयी, वह या तो मुस्लिम हो गयी या हिन्दूओं में समा गयी। यथार्थ में "तुर्को के जो आक्रमण दसवीं सदी के अंत में भारत पर प्रारम्भ हो गए थे, उन्होंने इस देश की व्यवस्था और शांति पर कठोर कुठाराघात किया था। इन नए प्रकार के मलेच्छों व यवनों के आक्रमणों से भारत की जीवन-शक्ति निर्बल पड़ गई थी और मगध के महाविहार भी देर तक अपनी सत्ता को कायम रखने में असमर्थ रहे थे। इसमें संदेह नहीं कि मगध और भारत के अन्य प्रदेशों के बौद्ध भिक्षुओं ने चीन जाकर वहाँ बौद्ध धर्म भारतीय भाषा, सभ्यता, कला और संस्कृति के प्रचार के लिए जो अनुपम कार्य किया, वह भारत के इतिहास के लिए अत्यंत गौरव की

ISBN: 978-93-93166-10-4

वस्तु है।[10]

बौद्ध धर्म के पतन के प्रमुख कारण

यद्यपि भारत में बौद्ध धर्म का तेजी से विस्तार हुआ और भारत से ही विदेशों में गया, तथापि भारत में बौद्ध धर्म लगभग नष्ट हो गया। इसके निम्नलिखित कारण थे-

बौद्ध संघों में भ्रष्टाचार का प्रवेश

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त । आचार-विचार को शुद्ध रखने के नियम धीरे-धीरे शिथिल हो गए और बौद्ध भिक्षुओं में भ्रष्टाचार उत्पन्न हो गया। अतरू लोग विलासी एवं पाखण्डी भिक्षुओं से घृणा करने लगे।

बौद्धों में तान्त्रिक प्रथाओं की उत्पत्ति

धीरे-धीरे बौद्धों में तन्त्रवाद (जादू-टोने) आदि का प्रवेश हो गया। महात्मा बुद्ध के पिछले जीवन के सम्बन्ध में हजारों व्यर्थ की कथाएँ प्रचलित हो गई। अतः इस धर्म से लोगों का विश्वास उठने लगा।

बौद्धों का दो सम्प्रदायों में विभाजन

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त बौद्ध 'महायान' और 'हीनयान' नामक दो सम्प्रदायों में बँट गए, जिससे इनकी शक्ति घटने लगी। महायान बौद्धों ने मूर्ति-पूजा, योग तथा हिन्दुओं के कई अन्य सिद्धान्त अपना लिए, जिससे बौद्धों और हिन्दुओं में बहुत कम भेदभाव रह गया। धीरे-धीरे महायान बौद्ध हिन्दू धर्म में मिल गए तथा हिन्दुओं ने भी बुद्ध को अवतार मान लिया।[11]

डॉ. अम्बेड़कर भी भारत में बौद्ध धर्म के ह्रास एवं पतन का कारण

ISBN: 978-93-93166-10-4

मुख्य रूप से मुसलमानों के आक्रमण को ही मानते हैं। उनके अनुसार "इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत में बौद्ध धर्म का पतन मुसलमानों के आक्रमण के कारण हुआ। इस विषय पर विसेन्ट स्मिथ का कथन है, "मुसलमान आक्रमणकारियों ने अनेक स्थानों पर जो भीषण हत्याकाण्ड किये, वे रूढ़िवादी हिन्दुओं द्वारा किए गए अत्याचारों से कही अधिक प्रबल थे और भारत के कई प्रांतों से बौद्ध धर्म के लुप्त होने के लिए भारी जिम्मेदार हैं।[12]

इस प्रकार सातवीं शताब्दी तक भारत में बौद्ध धर्म की निरन्तर प्रगति होती रही। तत्पश्चात् उसका क्रमिक ह्रास प्रारम्भ हुआ तथा अन्ततोगत्वा बारहवीं शताब्दी तक यह धर्म अपनी मूलभूमि से विलुप्त हो गया। विभिन्न विद्वानों द्वारा बताये गये कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार है- (1) सातवीं शती का अन्त होते-होते भारत कई छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में बँट गया, जो सदा एक दूसरे से युद्ध करते रहते थे। बौद्ध धर्म को अशोक, कनिष्क एवं हर्ष जैसे समर्थ, प्रभु-सत्तासम्पन्न, उत्साही एवं प्रजावत्सल सम्राटों जैसा अन्य शासकों का आश्रय नहीं प्राप्त हो सका। अब उसे राजकीय आश्रय मिलना असम्भव था, हाँ बंगाल के पालवंशीय राजाओं से कुछ वर्षों तक स्नेह अवश्य मिला, किन्तु बौद्ध धर्म अब ह्रास की ओर उन्मुख हो गया था। (2) बौद्ध धर्म के महान सिद्धान्तों के योग्यतम एवं उद्भट व्याख्यातागण अपने धर्म के प्रचारार्थ इस देश को छोड़कर अन्य देशों में चले गये। डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया एण्ड चाइना' में ऐसे 24 महत्वपूर्ण भारतीय विद्वानों का उल्लेख किया है जो बुद्ध के उपदेशों के प्रचारार्थ चीन में तीसरी शती से 973 ई. तक जाते रहे।[13] उन्होंने कुछ ऐसे चीनी विद्वानों का उल्लेख किया

ISBN: 978-93-93166-10-4

है जो बौद्ध धर्म सम्बन्धी पवित्र स्थलों के दर्शनार्थ एवं बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए भारत में आते रहे हैं।

ऊपर से पतन-बौद्ध धर्म भारत में किसी भी काल में एक प्रमुख धर्म के रूप में स्थापित हुआ प्रतीत नहीं होता। यह मुख्यतः नगरीय केन्द्रों तक ही सीमित था जहाँ जनसंख्या का छोटा भाग निवास करता था। विनय और सुत्त पिटक में निवासों का एक सांख्यिकीय अध्ययन यह संकेत करता है कि इसमें 95.37 प्रतिशत संख्या शहरों की थी।[14] उसी तरह जब हम विनय या सुत्तपिटक में वर्णित व्यक्तियों के जन्म स्थानों को आंकड़ों को देखते हैं तो पता चलता है कि 54.34 प्रतिशत लोग केवल 6 मुख्य नगरीय केन्द्रों-वाराणसी, श्रावस्ती, राजगृह, कपिलवस्तु, वैशाली और मिथिला से संबंधित थे।

निष्कर्ष-

निष्कर्षतः आज बौद्ध धर्म अनेक दूरवर्ती देशों में फैला हुआ है और जिसके अनुयायियों की संख्या विश्व में चौथे स्थान पर है किन्तु भारत में अधिकांश अन्य धर्म वालों से बहुत कम हो गयी है। अपने आरम्भिक दौर से ही बौद्ध धर्म राजाओं, धनी व्यक्तियों और नौकरशाहों में लोकप्रिय था। ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म के नगरीय और अभिजात्य वर्गीय चरित्र ने उसे आम जनता से अलग रखा। इसके ऐसे स्वरूप के कारण इसकी कठिनाईयाँ और भी बढ़ गयी होगी जब नगरीकरण का पतन होने लगा। बौद्ध धर्म जिसने बढ़ते शहरीकरण को वैचारिक अधिरचना प्रदान की और अपनी पुष्टि व विकास के लिए उस पर अधिकतर निर्भर रहा, अन्ततः पतन में उसी का शिकार बन गया होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जोषी, एल.एम., स्टडीज इन द बुद्धिस्ट कल्चर ऑफ इंडिया, पृ.*

ISBN: 978-93-93166-10-4

302

2. *बागची, पी.सी., डिक्लाइन ऑफ बुद्धिज्म एण्ड इट्स कॉज, पृ. 412*
3. *कॉज, ई., ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म, पृ. 86*
4. *काणे, पी.वी., हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग-2, पृ. 1003*
5. *डेविड्स, टी. डब्ल्यू. राइज, दि रिलेशंस बिटवीन अर्ली बुद्धिज्म एण्ड ब्रह्मणिज्म, जिल्द 10, पृ. 274-86*
6. *प्रसाद, हरकिशोर, पुष्यमित्र शुँग एण्ड बुद्धिस्ट्स, जिल्द 40, पृ. 29-30*
7. *डेविड्स, राइज, बुद्धिस्ट इंडिया, पृ. 318-320*
8. *एलियट, सी., हिन्दुज्म एण्ड बुद्धिज्म, भाग-2, पृ. 6*
9. *एलियट, एच.एम., हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द 2, पृ. 306*
10. *सांकृत्यायन, राहुल, बौद्ध संस्कृति, पृ. 34*
11. *गोखले, बी.जी., द अर्ली बुद्धिस्ट एंड द अरबन रिवोल्युशन, वाल्यूम-5, पृ. 7-22*
12. *स्मिथ, विसेन्ट, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ. 419-420*
13. *राधाकृष्णन, इण्डिया एण्ड चाइना, पृ. 27*
14. *सराओ, के.टी.एस., प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्मः उद्भव, स्वरूप एवं पतन, पृ. 44*

ISBN: 978-93-93166-10-4

''मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद प्रादुर्भूत जन-राज्य''

डॉ. प्रताप विजय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय
खलीलाबाद, संत कबीर नगर, उ0प्र0, भारत

सारांश

प्राचीन भारतीय बौद्ध एवंज जैन साहित्य के सम्यक अनुशीलन से यह तथ्य प्रमाणित है कि भारत में पुरातन काल से गणतंत्रात्मक शासन का चलन था। वैदिक साहित्य में भी वैराज्य तथा द्वैराज्य राज्यों का उल्लेख मिलता है। वैराज्य में समस्त प्रजागण स्वयं शासन संचालित करता था। निरूक्त में यास्क ने वैराज्य के सन्दर्भ में लिखा है कि '' विगत राजकं वैराज्यं'' अर्थात राजा रहित राज्य। इस प्रकार वैराज्य विशुद्ध जनतंत्रात्मक राज्य थे, और द्वैराज्य अर्थात ऐसा राज्य जहॉ दो राजा हों। कोटिल्य के अर्थशास्त्र में दो प्रकार के संघों का उल्लेख है, प्रथम वार्ता शस्त्रोपजीविनः अर्थात जो कृषि पशु-पालन तथा युद्ध पर आश्रित थे। और द्वितीय राजशब्दोपजीजिनः हैं। प्रथम में कम्बोज तथा सुराष्ट्र के साथ क्षत्रियों का सम्बन्ध बताया गया है,

ISBN: 978-93-93166-10-4

और दूसरे में लिच्छवि, वज्जि, मल्ल, मद्र, कुकुर, पांचाल की गणना की गयी है। डॉ. डी0सी0 सरकार ने दूसरे को गणतंत्रात्मक माना है। अष्टाध्यायी में भी संघ राज्यों को राजाधीन राज्यों से पृथक बताया गया है। महाभारत में भी गणतंत्रात्मक राज्यों का उल्लेख प्राप्त है। बुद्ध के काल में कपिलवस्तु के शाक्यों, वैशाली के लिच्छवियों के सशक्त गणराज्यों के साथ ही शिशुमारगिरि के भग्गों, अलकप्प के बुलीयों, केसपुत्त के कलामों, रामग्राम के कोलियों और कुशीनारा के पृथक-पृथक मल्लों, पिप्पलिवन के मोरियों तथा मिथिला के विदेहों का गण राज्य विद्यमान था। जिसका विशद अध्ययन सर्वप्रथम रीज डैविड्स ने अपनी पुस्तक ' बुद्धिस्ट इण्डिया ' में किया है।

छठी शदी ई0पू0 में गणतंत्रों की स्थिति अत्यंत सुदृढ दिखती है। किन्तु राजतंत्रों की साम्राज्यवादी नीति ने गणतंत्रों के अस्तित्व को संकट में डाल दिया। इस प्रकार वास्तव में राजतंत्रात्मक राज्यों का उदय और उनका विकास गणतंत्रों के लिए बड़ी चुनौती सिद्ध हुए। प्रारम्भ में जब राजतंत्रात्मक राज्य पृथक-पृथक थे, तब गणराज्यों को अपना अस्तित्व बनाये रखने में कठिनाई नही थी। परन्तु छठी शदी ई0पू0 के उत्तरार्द्ध में जब मगध, कोशल, वत्स, और अवन्ति राजतंत्र शक्तिशाली हुए तो गणतंत्रों का अस्तित्व संकट में पड़ गया, और मगध के उत्कर्ष के पश्चात् मौर्य साम्राज्य के साम्राज्यवादी नीति और कौटिल्य के साम्राज्यिक सिद्धान्त ने गणराज्यों के अस्तित्व बनाये रखने का किंचित संभावना भी समाप्त कर दिया। कई प्रकार के अवलम्वन का सहारा कौटिल्य ने इस महान आदर्श हेतु लिया, कि उसका स्वामी समस्त संघों का एक मात्र राजा रहे,। इसमें काफी हद तक वह सफल रहा, क्योंकि

ISBN: 978-93-93166-10-4

मौर्य काल में इन शक्तिशाली संघों के अस्तित्व का कोई वास्तविक प्रमाण नहीं प्राप्त है।

किन्तु इन शक्तिशाली संघों की आधारभूत संघ भावना की जड़े इतनी गहरी थी कि किसी सम्राट की नीति से उनका समूल उन्मूलन असंभव था। यही कारण है कि मौर्य सम्राज्य के पतन के पश्चात इन संघों ने पुनः सिर उठाया, और कुछ ही समय में यौधेयों, मालवों, वृष्णियों, आर्जुनायनों, औदुम्बरों तथा कुणिन्दों जैसे संघों ने अपनी संघ प्रतिष्ठा स्थापित कर ली, जिसका सम्यक अध्ययन यहॉ प्रस्तुत हैं।

मुख्य शब्द

जनराज्य, संघराज्य, वैराज्य, द्वैराज्य, वार्ताशस्त्रोपजीविनः, राजशब्दोपजीविनः, यौधेय, आर्जुनायन, औदुम्बर।

प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य के साम्राज्यवादी नीति से राजनीतिक संघों का विनाश हुआ। मौर्यो के पतन के बाद राजनीतिक विचारों के नवीन सम्प्रदाय के उदय ने गणपद्धति शासन व्यवस्था को पुनजीर्वित होने का सुअवसर प्रदान किया। कौटिलीय अर्थशास्त्र जो एक मौर्य युगीन रचना है, इसमें अराजक राज्यों के सन्दर्भ में एक विवरण उल्लिखित हैं। अर्थशास्त्र के एक सम्पूर्ण अध्याय (अधिकरण II अध्याय I) में संघों पर विचार करते हुए उनके दो वर्ग निर्दिष्ट हैः-

1- वार्ताशस्त्रोपजीविनः

2- राजशब्दोपजीविनः[1]

ISBN: 978-93-93166-10-4

''कम्पोज-सुराष्ट्र-क्षत्रिय श्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः लिच्छविक -वृजिक -मल्लक -मद्रक-कुकुर-कुरू-पा´चालदयो राजशब्दोपजीविनः।''

प्रथम वर्ग में उन क्षत्रिय श्रेणियों का समावेश था जो व्यापार-वाणिज्य -कृषि अर्थात वार्ता के साथ सैनिक व्यवसाय का अनुशरण करती थी। अर्थशास्त्र के कई सन्दर्भो से पता चलता है कि कभी-कभी इनका स्वतंत्र अस्तित्व भी होता था।

दूसरे वर्ग में उन संघों या गणों को रखा गया है, जो राजा की पदवी या उपाधि (राजशब्द) धारण करते थे। इसके अन्तर्गत लिच्छविकों, मल्लकों, मद्रकों, कुकुरों, कुरूओं तथा पांचालों का परिगणन था। बौद्ध पालि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि लिच्छवि 'राजा' की उपाधि का व्यवहार करते थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र से जानकारी मिलती है कि अजातशत्रु के आक्रमण के पश्चात् भी लिच्छवियों का पूर्ण उन्मूलन नही हुआ था, अपितु उन्होने अपना आस्तित्व बनाये रखा और उनका लोकतांत्रिक संविधान तृतीय शदी ई0पू0 के प्रारम्भ तक विद्यमान था तथा मौर्य युग तक उसमें कोई परिवर्तन नही हुआ था।[2]

इस प्रकार दिखाई देता है कि कौटिल्य के साम्राज्यवाद के प्रभावशाली होते हुए भी संघ जीवित रहा। इस महान आदर्श प्राप्ति के लिए, कि उसका स्वामी समस्त संघों का एक मात्र राजा बना रहे, इसके लिए उसने अनेक विधान का सहारा लिया, और काफी हद तक सफल रहा। क्यांेकि मौर्य काल में इन शक्तिशाली संघों के अस्तित्व का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नही होता। लेकिन इसके बावजूद इनके आस्तित्व की आधारभूत संघ भावना

ISBN: 978-93-93166-10-4

की जड़े इतनी गहराई तक थी कि किसी सम्राट की आज्ञा से उनका उन्मूलन होना असंभव था। हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पराक्रम तथा कौटिल्य की कूटनीतिक प्रतिभा के द्वारा स्थापित मजबूत केन्द्रीभूत शासन का पराभव होने पर स्वतंत्र राजनीतिक संघों ने पुनः सिर उठाया और उनमें से कुछ शासन-सत्ता की चरम सीमा तक पहुँचे। प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात हेाता है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरान्त एक शताब्दी के भीतर यौधेय, मालव, वृष्णि, आर्जुनायन, औदुम्बर और कुणिन्द गण ने अपनी स्वतंत्रता स्थापित कर ली थी। यह भी दिखायी देता है कि इनमें लिच्छवियों, वृजिकों, कुरूओं और पांचालों की उपस्थिति नही दिखती, किन्तु इनका स्थान मालव, यौधेय, आर्जुनायन तथा अन्य जनों ने ले लिया था। यह वैसा ही है जैसे व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, परन्तु आत्मा जीवित या विद्यमान रहती है।

यह ध्यातव्य तथ्य है कि मगध के पड़ोसी गणराज्य सदैव के लिए लुप्त प्राय हो जाते हैं। इसमें एकमात्र लिच्छविगण इतिहास में पुनः प्रकट होता है, किन्तु तब वे नेपाल में एक राजसत्तात्मक शासन के अधीनस्थ थे। इस प्रकार कौटिल्य के सिद्धान्तों को जिस पूर्णता के साथ क्रियान्वित किया गया वह महत्वपूर्ण है, किन्तु कालान्तर में राजनीतिक विचारों में भी विशेष परिवर्तन हुआ, जबकि भारत कुछ शदियों तक साम्राज्यवाद का अभ्यस्थ हो चुका था, तब कौटिल्य की रचनाओं को प्रेरित करने वाले विचार असामयिक प्रतीत हुए और कौटिल्य के प्रभाव से बाहर कुछ राजनीतिक संगठनों का उदय हुआ, जिन्होने गणराज्यों के समृद्धि एवं कल्याण और उनके अविच्छिन्न

ISBN: 978-93-93166-10-4

आस्तित्व में इतनी रूचि ली, जितना कभी कौटिल्य ने उनके विनाश और पतन में ली थी।

यद्यति प्राचीन भारत के राजनीतिक आदर्शो के सुनियोजित एवं क्रमवद्ध विकास की जानकारी प्राप्त करना एक दुरूह कार्य है, लेकिन इसके बावजूद इससे सम्बन्धित तथ्य प्राप्त करना विशिष्ट हैं। जहॉ तक स्वतंत्र राजनीतिक संघों का सम्बन्ध है, गौतम बुद्ध उनके पक्षधर दिखायी देते हैं किन्तु मगध का महत्वाकांक्षी साम्राज्यवाद उनके अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर सका तथा स्वयं बुद्ध के काल में ही हर्यक वंशीय शासक अजातशत्रु का मंत्री सबसे महत्वपूर्ण गणराज्य में से एक का उन्मूलन करने के लिए मार्ग तैयार करने लगा था। इस कार्य में उसने जिन अनैतिक पहलुओं का सहारा लेकर वज्जियों में विभेद उत्पन्न किये उसका विस्तृत वर्णन बौद्ध ग्रन्थ अट्ठकथा में मिलता है।[3] यह राजनीतिक सम्प्रदाय के विचारों का व्यवहारिक उदाहरण माना जा सकता है, जिसका व्याख्याता स्वयं कौटिल्य था। इसमें राजनयिक सिद्धान्त एवं उसका व्यवहारिक रूप दोनों साथ-साथ कार्य कर रहे थे। चन्द्रगुप्त मौर्य का ब्राह्मण महामंत्री अपने ऐसे लक्ष्य प्राप्ति के लिए मदिरा और स्त्री का उपयोग करने में भी तनिक संकोच नहीं करता था। जिसके फलस्वरूप मौर्य साम्राज्य के विस्तार के साथ इन राजनीतिक संघों का भी अन्त हो गया। मौर्यो का जहॉ प्रत्यक्ष प्रभाव था, वहॉ यह विनाश इतना पूर्ण था कि भविष्य में किसी राजनीतिक गण या संघ की चर्चा तक नही मिलती।

ISBN: 978-93-93166-10-4

किन्तु जिस चेतना ने इन राजनीतिक संघों को जन्म दिया था, उसका अन्त इतना शीघ्र भी न हो सका। इनका समर्थन राजनीतिक संघों के विकास और उन्नति के पक्षधर राजनीतिक विचारों के नवीन सम्प्रदाय के उदय से हुआ, जिसके कारण मौर्य राजवंश के सुदृढ़ प्रभाव के हटते ही उनमें कुछ का पुनः आविर्भाव हुआ। कौटिलीय विचारधारा ने राजनीतिक संघों का विनाश किया। अतएव यह स्वाभाविक था कि राजनीतिक विचारों का नवीन सम्प्रदाय उन्हे पुनर्जीवन प्रदान करता। क्योंकि महाभारत[4] में किरात, दरद, औदुम्बर, पारद, वाह्लिक, शिवि, त्रिगर्त, केकय, अम्बष्ठ, क्षुद्रक, मालव, पौण्ड, अंग और वंग प्रभृत अनेक अराजक जनों का उल्लेख है, जिन्हे श्रेणीमन्त और शस्त्रधारी[5] संज्ञा से अभिहीत किया गया है। इन शब्दों की तुलना अर्थशास्त्र के क्षत्रीय श्रेणी और अष्टाध्यायी के आयुधजीवी संघ से की जा सकती है। यह उल्लेख्य है कि उक्त जनों में से एक 'यौधेय' की गणना स्पष्ट रूप से आयुधजीवी संघ के रूप में की गयी है। जहॉ तक वाह्लिकों का प्रश्न है महाभारत में कई स्थलों पर इन्हे 'वीर राजा' कहा गया है,[6] जो अर्थशास्त्र के राजशब्दोपजीवि शब्द का और जातक ग्रन्थों में वर्णित लिच्छवियों के 'राजा' कहे जाने का स्मरण कराते हैं। महाभारत में आनर्त, कालकूट, कुलिंद, आदि जन-संगठनों की चर्चा है, यद्यपि उनके शासन पद्धति का स्पष्ट संकेत नही है।

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् आविर्भूत गणराज्यांे के विषय में केवल महाभारत एवं अन्य साहित्यिक स्रोत के आधार पर उनके काल का विवेचन कठिन है, लेकिन इस कार्य में मुद्रा साक्ष्य का अध्ययन अवश्य मदद

ISBN: 978-93-93166-10-4

करता है। जिससे इन राजनीतिक संघों के अस्तित्व एवं स्वरूप का ज्ञान होता है-

1-यौधेय-गण

पाणिनि के काल में यह एक आयुधजीवी संघ था। यौधेयों के विषय में जानकारी मुद्रा एवं अभिलेखों पर आधारित है। कनिंघम के अनुसार यौधेयों की मुद्राएं प्रथम शदी ई0पू0 के आस-पास की है।[7] ई0जे0 रैप्सन ने भी इनका काल 100ई0पू0 निर्धारित किया है।[8] इन मुद्राओं पर 'यौधेयन' आलेख है जो आगे चलकर 'यौधेयानांगणस्य जय' में रूपान्तरित हो जाता हैं। यौधेयों की शक्ति एवं साधन सम्पन्नता की किंचित जानकारी शक-क्षत्रप शासक रूद्रदामन के जूनागढ़ (गिरनार) अभिलेख से मिलता है, जहॉ उल्लेख है कि -

सर्व्वक्षत्राविष्कृत वीर शब्द जातोत्सेका विधेयानां यौधेयानाम्।

अर्थात् समस्त क्षत्रियों के मध्य अपनी वीर उपाधि को व्यक्त करने के कारण दृष्ट यौधेयों को।[9]

शत्रु शासक के द्वारा की गयी यौधेयों की प्रशंसा अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यौधेयों की एक बड़ी मृण्मुद्रा पर लेख- ''यौधेयानां जयमन्त्रधराणां '' से तात्पर्य यह लगाया गया है कि उनके पास विजय श्री प्राप्त करने का मन्त्र था।[10]

गिरनार अभिलेख में रूद्रदामन अत्यंत गर्व से कहता है कि उसने यौधेयों का उन्मूलन कर दिया था। किन्तु योधेयों की मुद्राओं के आधार पर ज्ञात होता है कि इसके बाद भी वे अस्तित्वमान थें, और चतुर्थ शदी के अन्त

ISBN: 978-93-93166-10-4

तक वे शक्तिशाली राजनीतिक घटक के रूप मंे दिखायी देते हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति लेख में यौधेयों का उल्लेख उन जनों में है, जिन्होंने गुप्त सम्राट् को सभी 'कर' देकर उनकी आज्ञाओं का पालन और प्रमाण किया।[11] लेकिन प्रयाग प्रशस्ति लेख से यह संकेत मिलता है कि यौधेयों का राज्य गुप्त राज्य के प्रत्यक्ष शासन में न होकर एक सीमावर्ती राज्य था, जो उनकी प्रभुता स्वीकार करने के बाद 'कर' प्रदान किया था।[12]

यौधेयों के प्रान्त का निश्चयन मुद्रा एवं अभिलेख से होता है। एक अभिलेख भरतपुर के पास विजयगढ़ से तथा मुद्राएं सहारनपुर, मुलतान, पानीपत, सोनपत, कांगड़ा, से प्राप्त हुई हैं।

2- मालव गण

डॉ. आर0जी0 भण्डारकर ने मत व्यक्त किया है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में मालवों का उल्लेख पंजाब के एक आयुधजीवी संघ के रूप में मिलता है।13 यवन इतिहाकार इसका उल्लेख सिकन्दर द्वारा विजित 'मल्लोई जन' से करते हैं।14 मालवों की लगभग 600 मुद्राएं मिली हैं। इन मुद्राओं पर 'मालवाह्व जय' 'मालवानां जय, तथा ' मालवगणस्य जय' आलेख हैं। लेकिन यह निश्चित नही है कि इन मुद्राओं के प्रवर्तक पाणिनि द्वारा उल्लिखित 'मालव' ही हैं। इन मुद्राओं के काल का निर्धारिण कनिंघम एवं कार्लाइल 250 ई0पू0 और ई0जे0 रैप्सन ने 150 ई0पू0 का किया है।[15]

लेकिन इनका काल 150 ई0पू0 के आस-पास ही समीचीन प्रतीत होता है, क्यों कि इन मुद्राओं के लेख की लिपि सम्राट अशोक के जितनी प्राचीन नही हैं। नहपान के जामाता उषवदात्त के नासिक अभिलेख में उसके

ISBN: 978-93-93166-10-4

द्वारा मालवों को पराजित करने का सन्दर्भ उल्लिखित है। इन लेखों में मालवों के स्थान पर ' मालय' अंकित है, जो संभवतः प्राकृत में 'य' और 'व' के परस्पर विनिमय से होता है। अतः मालव और मालय दोनों अभिन्न है।[16] ऐसा प्रतीत होता है कि यौधेयों की भॉति मालव भी शक आक्रान्ताओं के शत्रु थें, जिन्होने प्रथम शदी ई0 के अन्त में उनके समीपवर्ती प्रदेश पर आक्रमण किया तथा अपने नेता नहपान की अधीनता मंे एक राज्य स्थापित कर लिया। बाद के अभिलेखों में विक्रमी संवत में तिथियॉ है तथा डॉ. आर0जी0 भण्डारकर ने 'गण' शब्द को संघ का पर्यायवाची मानकर ई0पू0 58 का संवत मालवों के गण स्वातंत्र्य की स्थापना से आरम्भ हुआ स्वीकार करते हैं। या जिस प्रकार मालवों ने उस प्रदेश को अपना नाम दिया, जहॉ वे अन्तिम रूप से बस गये थे। उसी प्रकार उन्होने जिस संवत् का व्यवहार किया उसका नाम भी उन्ही के नाम पर पड़ा। चौथी शदी तक मालवगण एक राजनीतिक इकाई के रूप में दिखायी देते हैं। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने उन्हे आपदस्त किया था।

3- आर्जुनायन गणः-

प्रथम शदी ई0पू0 के आस-पास की कतिमय मुद्राएं मिली हैं, जिनपर 'आर्जुनायन' लेख प्राप्त हैं। आर्जुनायन का उल्लेख गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भी हुआ है। इनका भी पराभव यौधेयों की भॉति गुप्तों के द्वारा ही किया गया था। इनका उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी हुआ है।[17] मुद्राओं के प्राप्ति स्थल के अनिश्चयन से इनके राज्य का सीमांकन कठिन है। वृहत्संहिता के अनुसार यह गणराज्य यौधेयों

ISBN: 978-93-93166-10-4

के समीपवर्ती था।[18] प्रयाग प्रशस्ति में नामों के उल्लेख के क्रमानुसार प्रस्तुत राज्यों की स्थिति को ही स्वीकार किया गया है। जहॉ' मालवार्जुनायनयौधेयमद्रक ' का उल्लेख है। इसके आधार पर आर्जुनायनों को मालवों और यौधेयों के मध्य ही रखना पड़ेगा। इस सन्दर्भ के आधार पर आर्जुनायनों की स्थिति भरतपुर और नागर के बीच होनी चाहिए। लेकिन यह स्थिति विजयगढ़ पाषाण-लेख के साथ समीचीन नहीं बैठता। प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ इनका मूल राज्य भरतपुर और अलवर के भू-भाग को स्वीकार करते है।[19]

4- औदुम्बर-गण

पाणिनी की अष्टाध्यायी में औटुम्बर जन को 'जलंधर-जन' का निकटवर्ती बताया गया हैं। इनके सिक्के औदुम्बर नाम मुक्त ब्यास नदी के ऊपर कांगड़ा आदि क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। एकमात्र मुद्रा साक्ष्य इनकी जानकारी का प्रमुख स्रोत हैं। श्री रामालदास बन्द्योपाध्याय मुद्रा की लिपि के आधार पर इन्हे प्रथम शदी ई0पू0 के निकट का माना हैं।[20] मुद्राओं के आधार पर इन्हे कांगड़ा, कुल्लू का समीपवर्ती परिच्छेत्र का स्वीकार किया है। बृहत्संहिता मार्कण्डेय पुराण एवं विष्णु पुराण में औदुम्बरों का उल्लेख त्रैयगर्तो तथा कुणिन्दांे के साथ हुआ है, इसमें कपित्थलों को अम्बाला, त्रेगर्तो का कांगड़ा और कुलिन्दों को सतलज नदी के तटवर्ती माना गया है।

5- कुणिन्द जन

कुणिन्द जन का उल्लेख पुराणों में और महाभारत के सभा पर्व में मिलता है, जहॉ इन्द्रप्रस्थ के उत्तर में इसकी स्थिति बताई गयी है। कुणिन्द

ISBN: 978-93-93166-10-4

जन के चांदी और तॉबे के सिक्के बड़ी संख्या में मिले हैं। इनके सिक्के हिन्द-यवन सिक्कों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। किन्तु सिक्कों के प्रतीक पूर्णतः भारतीय हैं। इन पर ब्राह्मी लिपि में ' राज्ञः कुनिन्दस' लेख है। पृष्ठ भाग पर मुद्रालेख खरोष्ठी लिपि में है। कनिंघम महोदय इन मुद्राओं को 150 ई0 के आस-पास का मानते है।[21] कुणिन्दों की मुद्राएं पूर्व में गंगा नदी के दक्षिण-पश्चिम में हस्तिनापुर, सहारनपुर और अम्बाला तथा हिमालय के ढालू प्रदेश के निकट से मिली हैं। जिससे इनके राज्य की स्थिति का अनुमान होता है। इसकी पुष्टि विष्णु पुराण से भी होती है, जहॉ 'कुलिन्दोपत्यकाः' अर्थात पर्वत के उपत्यका का निवसी 22 कुलिन्द उल्लिखित है। इससे स्पष्ट होता है कि कुलिन्द पर्वतोपत्यकाओं के निकट निवास करते थे।

6- वृष्णि जन

वृष्णि जन का उल्लेख महाभारत में हुआ है, जहॉ जरासंघ के आक्रमण से आक्रान्त होकर उनके द्वारका में बसने का सन्दर्भ है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में इनका उल्लेख अन्धक-वृष्णियुग्म के रूप में हुआ है।[23] कौटिल्य ने इनका उल्लेख संघ के रूप में किया है।[24] वृष्णि संघ का नाम केवल एक मुद्रा पर सुरक्षित है। इस पर अंकित मुद्रा लेख को कनिंघम ने- ' वृष्णिराज ज्ञागनस्य भुभरस्य' पढ़ा था।[25]

डॉ. आर0सी0 मजुमदार के अनुसार यह भुभरस्य के स्थान पर त्रतरस्य हो सकता है, और इनका समर्थन ई0जे0 रैप्सन प्रभृत विद्वानों ने भी किया है।[26] एक जनपद के रूप में वृष्णि शब्द का उल्लेख बाणभट्ट के

ISBN: 978-93-93166-10-4

हर्षचरित में हुआ है।[27] अक्षर रचना तथा लिपि के आधार पर इन मुद्राओं को ई0पू0 द्वितीय-प्रथम शताब्दी का माना जाता है।

7- शिबि-गण

ऐतिहासिक काल में शिबि का उल्लेख यवन इतिहासकारों ने सिबे या सिबोई के रूप में किया है। 1872 ई0 में कार्लायल ने चितौड़ के पास ताम्बावती नगरी नामक प्राचीन नगर का खण्डहर प्राप्त किया। यहॉ से कुछ प्राचीन मुद्राएं भी मिलीं, जिसका उल्लेख आर्क्यालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द 6 में किया गया है। यहॉ से प्राप्त मुद्राओं के एक वर्ग पर-मझमिकायसिबिजनपदस' लेख अंकित है। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/361 में जनपद की अभिस्वीकृति समुदाय के अर्थ में हुआ है।[28]

इस प्रकार इसका अर्थ यह हुआ मझमिका के शिबि समुदाय का। याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा के अधीन जनपद की कल्पना है, किन्तु 'शिबि' जनपद के द्वारा मुद्राओं के प्रवर्तन से स्पष्ट होता है कि शिबि मध्यमिका के थे। पतंजलि ने महाभाष्य में इस नगर पर यवन आक्रमण का उल्लेख किया है-

अरूणद् यवनः साकेतम्, अरूणद यवनों माध्यमिकाम्।[29]

महाभारत एवं वृहत्संहिता में माध्यमिका शब्द एक 'जन' नाम के रूप में प्रयुक्त है। अक्षर-रचना, एवं लिपि के आधार पर शिबि जनपद की मुद्राओं को द्वितीय-प्रथम शदी ई0पू0 का माना जाता है।

इन विस्तृत ऐतिहासिक आलेखों, सन्दर्भो के आलोक में प्रमाणित होता है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरान्त एक शताब्दी के भीतर भारत

ISBN: 978-93-93166-10-4

में यौधेय, मालव, आर्जुनायन, औदुम्बर, कुणिन्द, वृष्णि और शिबि आदि राजनीतिक गणतांत्रिक संघ प्रादुर्भूत हुए।

अध्ययन का उद्देश्य

वैदिक युगीन समाज यायावर जीवन व्यतीत करते हुए कालान्तर में कबिले, जन, विश के रूप में सन्निवेशित हुआ। उत्तर वैदिक युग में राज्य की राज्याभिषेक आस्तित्व में आया। जिसका क्रियान्वयन छठी शदी ई0पू0 के राजनीतिक धरातल पर दिखायी देता है। इस समय दो प्रकार के राज्य अस्तित्वमान दिखायी देते हैं-राजतंत्र और गणतंत्र। राजतंत्रों की शासन पद्धति के अन्तर्गत 16 महाजनपद एवं गण या जन पद्धति के अन्तर्गत 10 गणराज्यों का सन्दर्भ बौद्ध एवं जैन साहित्यों में प्राप्त हैं।

गणराज्यों के शासन पद्धति में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न सभा केन्द्रीय समिति या परिषद थी। बौद्ध जातक ग्रन्थों में लिच्छवियों के केन्द्रीय समिति में 7707 सदस्यों एवं यौधेयों की केन्द्रीय समिति में 5000 सदस्यों की सूचना मिलती है। पाश्चात्य विचारकों की प्रारम्भ में यह धारणा थी कि प्राचीन भारतीय जनमानस गणतंत्रात्मक शासन पद्धति से सर्वथा अनभिज्ञ था। परन्तु एक सम्यक अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट हो चुका है कि वैदिक साहित्यों में बैराज्य का उल्लेख जनतांत्रिक या गणतांत्रिक पद्धति का ही संकेत है, और छठी शदी ई0पू0 में गणतंत्रों के विषय में ठोस प्रमाण उपलब्ध हैं। लेकिन साम्राज्यवाद के उदय के फलस्वरूप राजतंत्रों के महत्वाकांक्षा से गणराज्यों का पतन हुआ, क्योंकि राजतंत्र में सम्पूर्ण शक्ति राजा में निहित थी, जबकि गणराज्यों की शासन व्यवस्था में किसी विषय पर निर्णय लेने के लिए

ISBN: 978-93-93166-10-4

अधिवेशन या सभा का निर्णय आवश्यक था। जिसके कारण किसी आपत्ति या महत्वपूर्ण निर्णय में भी विलम्ब हो जाता था। मौर्य साम्राज्य के विस्तारवादी नीति ने गणतंत्रों की मूल भावना एवं आधाभूत तत्व भारतीय संस्कृति में सदैव विद्यमान रहे और मौर्य साम्राज्य के पतनोंपरान्त पुनः गणराज्यों का स्वरूप प्रकट हुआ, जिनके विषय में सम्यक जानकारी साहित्य एवं मुद्रा साक्ष्य के आधार पर होती है। इस क्रम मंे यौधेय, मालव, औदुम्बर, आर्जुनायन, वृष्णि, शिबि, आदि संघों या जनों का प्रादुर्भाव भारतीय गणतांत्रिक शासन पद्धति के अनुरूप हुआ। इसके विषय में सम्यक अध्ययन एवं जानकारी के उद्देश्य से ही प्रस्तुत शोध-पत्र विषय का चयन किया गया है।

साहित्यावलोकन

अध्येता ने अपने अध्ययन में मौरोन्तर युगीन जन- राज्यों की स्थिति के विषय में जानने के लिए छठी सदी ई. पू. के गणराज्यों का स्वरूप एवं शासन पद्धति के विषय में अवलोकन किया है। साथ ही इन गणों या जन राज्यों के पतन के कारणों के परिपेक्ष में अध्ययन से पता चला कि इन जन राज्यों के विनाश में इनकी शासन पद्धति के जिनके किसी भी विषय पर या आपात (युद्ध) की स्थिति में भी निर्णय करने का अधिकार संपूर्ण जन या समूह (गण)का होता था।इसके कारण महत्वपूर्ण विषय पर सकारात्मक निर्णय आने पर विलंब होता थाए जिससे शत्रु पक्ष प्रभावी हो जाता था। इसके अतिरिक्त इंजनों के पतन का दूसरा पहलू राजतंत्र का प्रभावी होना थाए जिसमें निर्णय का पूरा अधिकार राजा में केंद्रित थाए और मंत्री परिषद

ISBN: 978-93-93166-10-4

राजा के सहयोगी होती थी। दूसरी तरफ मौर्य साम्राज्य को साम्राज्यवादी नीति भी इन जन राज्यों के अस्तित्व को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया। प्रस्तुत अध्ययन में यह भी तत्व उपस्थित हुआ कि जन राज्यों की जड़ें इतनी गहरी थी कि साम्राज्यवादी राजतंत्रो की जड़े ज्यों कमजोर हुईए इनका प्रभाव पुनरू दिखने लगा। मौर्य साम्राज्य के पतनोपरान्त जनराज्य एक बार फिर प्रादुर्भूत हुए और राजनीतिक पटल पर गणराज्यों के शासन पद्धति के अनुरूप राज्य दिखने प्रारम्भ हुए।

निष्कर्ष

छठी शदी ई0पू0 के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में महाजनपदों एवं गणराज्यों के विषय में अध्ययन से प्राचीन भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन की सम्यक जानकारी प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है। इनमें गणराज्यों के विषय में अध्ययन से प्राचीन भारतीय समाज में लोकतंत्र या जनतंत्र की जड़े गहरी होने के प्रमाण मिलते हैं। यद्यपि राजतंत्र के अन्तर्गत साम्राज्यवाद के विस्तारवादी सिद्धान्त के फलस्वरूप इन गणराज्यों का उनमें विलीन होने के उपरान्त भी यदा-कदा गणतंत्रीय अवधारणा के तत्व दिखते हैं, और जैसे ही उनके लिए अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ वे प्रस्फूटित हुए। जिनके विषय में सम्यक अध्ययन के उपरान्त यह प्रकट होता है कि छठी शदी ई0पू0 के गणराज्यों के पतन के बाद मौर्योत्तर युगीन भारत में पुनः यौधेय, मालव, औदुम्बर, आर्जुनायन, शिबि और वृष्णि आदि जन राजनीतिक

ISBN: 978-93-93166-10-4

पटल पर दिखने लगे और यहॉ तक कि तत्युगीन राजनीतिक धरातल पर चरमोत्कर्ष तक पहुॅचे। जिसका सम्यक अनुमान उनके सिक्कों और अभिलेखों से ही हो पाता है।

अन्त-टिप्पणी

1. *डॉ. आर0सी0 मजूमदार-प्राचीन भारत में संघटित जीवन-पृष्ठ-239।*
2. *वही-पृष्ठ-241*
3. *जर्नल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, जिल्द-7 पृष्ठ-994।*
4. *महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय-52, श्लोक-13-16।*
5. *वही, श्लोक-17।*
6. *वही, अध्याय-34, श्लोक-13 । " वाह्लिकाश्चापरे शूरा राजानः सर्व्व एव ते"।*
7. *क्वाइन्स ऑफ एन्सियंट इण्डिया-पृष्ठ-76*
8. *ई0जे0 रैप्सन- इण्यिन क्वाइंस- पृष्ठ-15।*
9. *एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द-8 पृष्ठ-44-47।*
10. *द्रष्टव्यः- प्रो0 श्रीराम गोपाल-प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह-खण्ड-1, पृष्ठ-324।*
11. *यह मुद्रा स्टीफन कार को लुधियाना के निकट मिली थी।*
12. *द्रष्टब्य-प्रोसीडिंग्स ऑफ एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल-1884 पृष्ठ-138-39*
13. *कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम् जिल्द-3 पृष्ठ-14।*
14. *डॉ. आर0सी0 मजूमदार-प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृष्ठ-258*
15. *इण्डियन एन्टिक्वेरी-1913 पृष्ठ-200।*

ISBN: 978-93-93166-10-4

16. आकः्रयोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द 6, पृष्ठ-162।
17. द्रष्टव्य-डॉ0 आर0सी0 मजूमदार-प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृष्ठ-260।
18. वही
19. बाम्बे गजेटियर, जिल्द, 1 पृष्ठ-28।
20. ई0जे0 रैप्सन, आन्ध्र क्वाइंस, भूमिका, पृष्ठ-56
21. पी.एल.गुप्ता, भारत के पूर्वकालिक सिक्के, पृष्ठ-168।
22. वही-पृष्ठ-168।
23. जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी-1897, पृष्ठ-886
24. ई.जे. रैप्सन-इण्डियन क्वाइंस- पृष्ठ-11
25. आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द-14 पृष्ठ-134
26. डॉ. आर0सी0 मजूमदार-प्राचीन भारत में संघटित जीवन-पृष्ठ-266-67
27. पी0एल0 गुप्ता, भारत क पूर्व कालिक सिक्के, पृष्ठ-164
28. वही, पृष्ठ-164-65
29. कनिंघम, क्वाइंस ऑफ एन्सिएंट इण्डिया, पृष्ठ-70
30. प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृष्ठ-266-267
31. हर्षचरित, कावेल द्वारा अनुदित, पृष्ठ-193,
32. प्राचीन भारत में संघटित जीवन- पृष्ठ-268,
33. प्रो. श्रीराम गोयल-मागध-सातवाहन-कुषाण साम्राज्यों का युग,-पृष्ठ-609

ISBN: 978-93-93166-10-4

बौद्ध धर्म में महिलाओं का स्थान - ‘‘आम्रपाली’’ के विशेष संदर्भ में

खुशबु जैन
शोधार्थी
इतिहास विभाग
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर, राजस्थान, भारत

सारांश

भारतीय इतिहास में महिलाओं के संबंध में यत्र-तत्र वर्णन उपलब्ध होता है, परन्तु साक्ष्य के रूप में विशिष्ट स्रोतों के संबंध में जानकारी प्राप्त नहीं होती है जिसका एकमात्र कारण यह है कि अन्य देशों की भाँति भारतीय समाज भी पुरूष प्रधान समाज रहा है और महिलाओं को विशेष महत्व प्रदान नहीं करता। फिर भी पुरूषों की तुलना में विश्व में महिलाओं की संख्या कदाचित कम नहीं है तथा इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि एक स्वस्थ समाज के निर्माण में भी उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

विद्वानों की मान्यता के आधार पर महिलाओं के त्याग, प्रयास, ज्ञान व उदार दृष्टिकोण के कारण ही सामाजिक मान्यताएं व परम्पराएं जीवित रही है जिसके आधार पर ही नारी का स्थान न केवल सामाजिक बल्कि धार्मिक,

ISBN: 978-93-93166-10-4

राजनैतिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक व अन्य कई विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिलता है।1

महिलाओं का धार्मिक क्षेत्र में सदैव से ही विशेष महत्व प्राप्त रहा है तथा वे सदैव धार्मिक अधिकारों से लाभान्वित रही है। सृष्टि के प्रारम्भ से महिलाएं स्वयं सही मार्ग ढुंढने में प्रयासरत रही है।

बौद्ध धर्म में महिलाएं एक ऐसा विषय है जिस पर धर्मशास्त्र, इतिहास, नृविज्ञान और नारीवाद आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से सम्पर्क किया जा सकता है।

प्राचीनकाल से ही भारतीय महिलाओं की स्थिति की ऐतिहासिकता समय, शासक स्थान के अनुसार बदलती रही है यो तो भारतीय महिलायें सब क्षेत्र में विश्व प्रसिद्ध रही है। ज्ञान-विज्ञान में तो थी ही साथ ही साथ बौद्ध धर्म के बारे में ज्यादा प्रसिद्ध रही है। वैदिक काल में वे पुरूषों के बराबर की स्थिति में होती थी पर यह स्तर उत्तर वैदिक काल में नहीं रहा, उनको पुरूषों के समक्ष भागीदारी नहीं मिलने लगी, महिलाओं की गिरी हुई स्थिति का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि उनकी तुलना विसेले सर्प से की जाने लगी अर्थात् उनसे दुरियां बनाकर रखने की सलाह तक दी जाने लगी। उसी समय भारत में दो मुख्य धर्मो का उदय जैन धर्म व बौद्ध धर्म ने महिलाओं की खोई हुई सम्मान व प्रतिष्ठा को दिलाने में अपनी अहम् भूमिका निभाई।2
महात्मा बुद्ध जिनका मूल नाम सिद्धार्थ था, इनके द्वारा स्थापित धर्म एक सुधारवादी धर्म था। महात्मा बुद्ध ने अपने-अपने मत प्रसार व प्रचार के लिए कई बौद्ध संघों की स्थापना के साथ ही महिलाओं की स्थिति सुधारने तथा

ISBN: 978-93-93166-10-4

उन्हें भी समाज में उचित स्थान दिलाने के लिए अलग से कई मठों व संघों की स्थापना की और बुद्ध ने महिलाओं के लिए मोक्ष प्राप्ति के दरवाजे खोल दिए, बौद्ध धर्म में महिलाएंे निर्वाण प्राप्त कर सकती थी, बौद्ध मठों में निवास कर सकती, बौद्ध भिक्षुणियां बन सकती थी, बौद्ध काल में महिलाओं को बोद्ध धर्म के साथ-साथ विज्ञान की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी, उनके गीतों को थेरीगाथा में संकलन किया गया ताकि नई आने वाली बौद्ध भिक्षुणियों के लिए ये ज्ञान मिल सके, कई महिलाओं को निर्वाण मिलने की बात विनय पिटक जैसे पाली बौद्ध ग्रन्थों में बताई गयी है।

महात्मा बुद्ध व आम्रपाली का इतिहास व परिचयः-

महात्मा बुद्ध का जन्म वैशाख पूर्णिमा के दिन 563 ई. पूर्व के बीच शाक्य गणराज्य की तत्कालीन राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुंबिनी नेपाल में हुआ था। इनके पिता शुद्धोधन व माता मायादेवी थी। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था तथा इनका पालन-पोषण मौसी गौतमी ने किया जिसने कालान्तर में बौद्ध भिक्षुणी के रूप में बौद्ध धर्म के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और उसकी गणना तपस्विनी नारियों में की जाने लगी थी।

आम्रपाली का परिचयः-

आम्रपाली बौद्ध काल में वैशाली के वृज्जिसंघ की इतिहास की प्रसिद्ध "लिज्छवी राज्यनृत्यांगना" थी। इनका नाम 'अम्बपाली' या 'अम्बपालिका' भी है।

आम्रपाली या अंबापली का जन्म लगभग 600-500 ईसा पूर्व हुआ था। कहा जाता है कि आम्रपाली के असली माता-पिता के बारे में कोई

ISBN: 978-93-93166-10-4

जानकारी उपलब्ध नहीं है। व्युत्पति के अनुसार आम्रपाली का नाम संस्कृत के दो शब्दों के संयोजन से हुआ है। 'अमरा' जिसका अर्थ है आम और 'पल्लवा' जिसका अर्थ है युवा पत्ते या अंकुर। ऐसा कहा जाता है कि वैशाली के एक शाही उद्यान में एक आम के पेड़ के नीचे अनायास पैदा हुई थी, इसलिए इनका नाम आम्रपाली हुआ। आम्रपाली असाधारण रूप से सुंदर और अलौकिक थी3 और कहते है जो भी उसे एक बार देख लेता है वह उस पर मुग्ध हो जाता था। अजातशत्रु उसके प्रेमियों में था ओर उस समय के उपलब्ध 'साहित्य अजातशत्रु के पिता बिम्बसार को भी गुप्त रूप से उसका प्रणयार्थी बताया गया है।4 आम्रपाली को लेकर भारतीय भाषाओं में बहुत से काव्य, नाटक और उपन्यास भी लिखे गए है।

महात्मा बुद्ध और आम्रपाली का सम्बन्ध

आम्रपाली बौद्ध काल के इतिहास की एक ऐसी पात्र है, जिसे सबसे खूबसूरत महिला होने का सौभाग्य प्राप्त है। अपनी जिस खूबसूरती के कारण आम्रपाली आज तक प्रसिद्ध है, उसी खूबसूरती के कारण आम्रपाली को बहुत अपमान सहना पड़ा। लेकिन अन्ततः यही खूबसूरती उसे अध्यात्म के मार्ग पर ले आई।

आम्रपाली में गजब का आकर्षण था। जब वह युवा हुई तो राज्य का हर व्यक्ति उनसे विवाह रचाना चाहता था स्थिति इतनी विकट हो गई कि किसी एक से विवाह करने पर राजाओं के बीच युद्ध की स्थिति बन जाती और राज्य की गणतन्त्रता खतरे में पड़ सकती थी। इस दुविधा से निकलने के लिए एक दिन राज्य में सभा का आयोजन किया गया, लेकिन सभा में भी

ISBN: 978-93-93166-10-4

कोई निष्कर्ष नहीं निकल पाया। ऐसे मैं एक ऐसा फैसला सुना दिया गया, जिससे आम्रपाली की जिंदगी नर्क के समान हो गई उसे नगरवधू अर्थात् वैश्या घोषित कर दिया गया। जहां उसे हर राजा और धनाड्य व्यक्ति भोग सकता था। आम्रपाली न चाहते हुए भी नगरवधू बनने के लिए मजबूर थी। उस समय राजगृह जाते या वहां से लौटते समय भगवान बुद्ध वैशाली में रूकते थे।

एक दिन भगवान बुद्ध के एक शिष्य आम्रपाली के द्वार पर भिक्षा मांगने आए। आम्रपाली आज तक केवल राजकुमारों और युवराजों को ही देखती थी, पहली बार उसने अनुपम सौन्दर्य से युक्त एक साधारण मनुष्य को देखा था। वह भिक्षुक को अंदर ले गई और उनका आदर-सत्कार किया। साथ ही कहा कि 3-4 दिन बाद वर्षा ऋतु शुरू होने वाली है, इस दौरान आप मेरे महल में ही निवास करना। यह बात सुनकर अन्य शिष्यों को बहुत बुरा लगा, उन्होंने उस शिष्य के पहुंचने से पहले ही महात्मा बुद्ध के पास जाकर सारी बातें कह दी इस पर महात्मा बुद्ध बोले क्या हुआ, अगर वह एक नगरवधू के घर चला गया, वैसे भी वर्षा ऋतु में सभी शिष्य किसी न किसी के घर विश्राम करेंगे आने तो दो उसे, अभी मैंने उसे वहां रहने की अनुमति नहीं दी है। बुद्ध यह बात कह ही रहे थे कि तभी वह शिष्य वहां पहुंचा और भगवान बुद्ध के चरणों में बैठते हुए सारा प्रकरण उन्हें सुनाया।

इस पर बुद्ध बोले तुम वहां रह सकते हो। बरसात के समय सभी को किसी न किसी के घर में शरण लेनी है। अतः मुझे तुम्हारे आम्रपाली के घर रहने में कोई आपत्ति नहीं है। बुद्ध के ऐसे वचन सुनकर सभी शिष्य हैरान

ISBN: 978-93-93166-10-4

रह गए, उन्होंने बुद्ध के सामने आपत्ति व्यक्त की और कहा कि वह वैश्या है। अगर आपके शिष्य को अपने मोह में बांध लेगी तो उसका धर्म नष्ट हो जाएगा। इस पर बुद्ध बोले, वह मेरा शिष्य है मुझे उस पर पूर्ण विश्वास है।

वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद भिक्षुक बुद्ध के पास लौट आया। साथ में आम्रपाली भी थी। आम्रपाली भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करते हुए बोली, मुझे भी अपनी शरण में ले लीजिए। मैंने आपके भिक्षु को अपनी और आकर्षित करने का हर प्रयास किया, किन्तु मैं सफल नहीं हो पाई। उसके आचरण से मुझे विश्वास हो गया है कि आपके चरणों में ही सत्य और मुक्ति का मार्ग है। मैं अपनी सारी संपदा भिक्षु संघ के लिए दान देना चाहती हूँ तथा आपसे अपने लिए भिक्षुणी संघ में स्थान मांगती हूँ।

उसके समर्पण और मन में छुपे विरक्ति के भाव को देखते हुए भगवान बुद्ध ने उसे अपनी शिष्या बना लिया।

बौद्ध धर्म के भिक्षु संघ में प्रवेश पाने वाली आम्रपाली पहली महिला थी। उनके भिक्षुणी बनने के बाद ही अन्य महिलाओं के लिए बुद्ध के चरणों में आने का मार्ग खुला। क्योंकि इससे पहले महिलाओं को भिक्षु संघ में सम्मिलित नहीं किया जाता था।

आम्रपाली ने अपने पाप के जीवन से मुख मोड़कर अर्हत् का जीवन बिताना स्वीकार किया।

प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान और ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तातों में भी वैशाली गणतन्त्र और आम्रपाली पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। दोनों ने लगभग एकमत से आम्रपाली को सौंदर्य की मूर्ति बताया। वैशाली गणतन्त्र

ISBN: 978-93-93166-10-4

के कानून के अनुसार हजारों सुंदरियों में आम्रपाली का चुनाव कर उसे सर्वश्रेष्ठ सुंदरी घोषित कर जनपद कल्याणी की पदवी दी गई थी।

इस प्रकार आम्रपाली के मानवीय तत्व से ही प्रभावित होकर भगवान बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना की थी। इस संघ के जरिए भिक्षुणी आम्रपाली ने नारियों की महत्ता को जो प्रतिष्ठा दी वह उस समय में एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'खुराना एवं चौहान' - भारतीय इतिहास में महिलाएँ
2. 'विमलचन्द्र पाण्डेय' - प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास भाग - प्रथम
3. 'रामचन्द्र ठाकुर' - आम्रपाली भाग प्रथम, द्वितीय ऐतिहासिक उपन्यास
4. 'मगधनामा'
5. 'विकिपीडिया'

ISBN: 978-93-93166-10-4

भारतीय समाज के परिवर्तन में महात्मा बुद्ध और डॉ0 अम्बेडकर की भूमिका

सुष्मिता बनर्जी
शोधकर्त्री
दर्शन और धर्म विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी, यूपी, भारत
सरिता रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दर्शन और धर्म विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी, यूपी, भारत

सारांश

समाज में व्याप्त कुरीतियों के साथ उत्पन्न रूढ़ियाँ उस समाज की गति को अवरूद्ध कर देती है। महात्मा बुद्ध और डॉ. अम्बेडकर ऐसे ही महापुरूष थे, जिन्होंने अपने समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति जागृत करने हेतु तथा मानव समाज व संस्कृति में परिवर्तन की प्रमुख धाराओं को रेखांकित करने

ISBN: 978-93-93166-10-4

की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। प्राचीन भारत के सांस्कृतिक धरोहर का सबसे उत्तम योगदान बुद्ध का आविर्भाव था। बुद्ध के आविर्भाव से मरी हुई मानवता जाग उठी। भारत में धर्मों और आध्यात्मिक विचारधाराओं में बौद्ध धर्म एक प्रमुख धर्म है। बुद्ध जटिल दार्शनिक समस्याओं में कभी नहीं उलझे तथा एक नैतिक दार्शनिक के रूप में उन्होंने मनुष्य के नैतिक तथा सामाजिक गुणों के विकास पर ही बल दिया। विश्व के शैक्षणिक संस्थानों का सबसे महान आधुनिक योगदान डॉ. अम्बेडकर का रहा। बुद्ध ने मानव जाति को समानता का आदर्श प्रस्तुत किया। महात्मा बुद्ध के इसी आदर्श से प्रभावित होकर डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध दर्शन की पुनर्व्याख्या करके उसके महत्वपूर्ण तथ्यों का विश्लेषण किया तथा उसके भारतीय सामाजिक समस्या के निराकरण हेतु एक हल के रूप में प्रस्तुत किया। डॉ. अम्बेडकर ने धर्म को वैयक्तिक आत्माओं के आध्यात्मिक मोक्ष के एक साधन के रूप में नहीं देखा, अपितु एक 'सामाजिक आदर्श' समझा जो मानव-मानव के बीच सम्यक् सम्बन्ध स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम बने।

मुख्य शब्द- परिवर्तन, समाज, संस्कृति, नैतिक, बुद्ध, सामाजिक क्रान्ति, शोषण, दलित, तथागत बुद्ध, मानवीयता, बाबासाहेब अम्बेडकर, बुनियादी, आदर्श।

प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रकृति हो अथवा समाज या संस्कृति कुछ भी शाश्वत या स्थायी नहीं है। सभी परिवर्तनशील हैं और सभी में परिवर्तन कमोबेश होता रहता है। समाज व संस्कृति में परिवर्तन या तो

ISBN: 978-93-93166-10-4

आन्तरिक कारणों से होता है या बाह्य कारणों से अथवा दोनों ही प्रकार के कारणों से हो सकता है। वैसे समाज व संस्कृति में परिवर्तन परिलक्षित तो होता है, किन्तु यह बताना मुश्किल होता है कि कौन-सा परिवर्तन कब घटित हुआ। समाज में कब कोई नया परिवर्तन आया और कब खत्म हो गया।[1] दूसरे शब्दों में, परिवर्तन के अध्ययन के साथ समाज वैज्ञानिक परिवर्तन के दौरान समाज व संस्कृति में उन्नति व विकास अथवा अवनति या ह्रास की क्या दशा व दिशा रहीं, यह जानने का भी प्रयास करते हैं। वैसे यह सच है कि मौसम विज्ञान की भाँति वातावरण में चौबीस घण्टे के भीतर होने वाले बदलाव की माप की तरह समाज विज्ञान में समाज व संस्कृति में होने वाले बदलाव को मापा नहीं जा सकता किन्तु लम्बे ऐतिहासिक दौर में इनमें परिवर्तन की मुख्य धाराओं को रेखांकित अवश्य किया जा सकता है और उनकी व्याख्या भी की जा सकती है। भारतीय समाज की रचना का आधार वर्ण-व्यवस्था है। यह वर्णाश्रम धर्म, कर्म व पुनर्जन्म पर आधारित हिन्दू वैचारिकी द्वारा संपोषित व तद्जनित शास्त्रीय विधान द्वारा संचालित होती रही है। इसका उद्भव आज से करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व हुआ। यद्यपि इसमें मौखिक परिवर्तन के लिए अतीत में अनेक प्रयास हुए और समय के साथ इसमं परिवर्तन भी हुए तथापि इसके मूल स्वरूप में कभी कोई स्थायी बदलाव नहीं आया। इसलिए हिन्दू समाज इसे एक सनातन व आदर्श व्यवस्था निरूपित करता रहता है। हालांकि आधुनिक युग की आवश्यकताओं व चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुए स्वाधीन भारत के विधान में वर्ण एवं जाति-व्यवस्था को कोई स्थान नहीं दिया गया है, तथापि भारतीय समाज में

ISBN: 978-93-93166-10-4

वर्ग व जाति का उच्छेद अभी भी नहीं हो पाया है। समाज व संस्कृति में परिवर्तन की मुख्य धाराओं की व्याख्या कई आधारों पर की जा सकती है। इन आधारों में एक विश्वसनीय आधार इनमें परिवर्तन को प्रेरित करने वाले मूल प्रेरणास्त्रोत हैं जिन्होंने समाज में नई सांस्कृतिक मान्यताओं व मूल्यों की स्थापना के माध्यम से सामाजिक संबंधों को नया स्वरूप प्रदान करने के प्रयास किए। भारतीय समाज व संस्कृति में क्रांतिकारी परिवर्तन की पहल वस्तुतः उत्तर महाभारत काल में महावीर स्वामी व भगवान बुद्ध द्वारा की गई। मध्यकाल में रविदास, कबीर व नानक आदि सन्तों ने इसे आगे बढ़ाया। आधुनिक काल में ज्योतिबा फुले, नारायण गुरू, रामास्वामी नायकर तथा अम्बेडकर ने इसे साकार करने का काम किया।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय समाज वर्णाश्रम धर्म, कर्म व पुनर्जन्म पर आधारित हिन्दू वैचारिकी द्वारा संपोषित व तद्जनित शास्त्रीय विधान द्वारा संचालित होती रही है। इसका उद्भव आज से करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व हुआ। यद्यपि इसमें मौखिक परिवर्तन के लिए अतीत में अनेक प्रयास हुए और समय के साथ इसमें परिवर्तन भी हुए तथापि इसके मूल-स्वरूप में कभी कोई स्थायी बदलाव नहीं आया। इसी समस्या के निवारण हेतु भारतीय समाज में एक ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिसमें मनुष्य को समानता व वैचारिक स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। समाज में व्याप्त परम्परागत रूढ़ियों का अन्त करना अति आवश्यकता है। जिससे समाज में समानता व नैतिकता का स्तर ऊँचा हो सके।

ISBN: 978-93-93166-10-4

साहित्याव्लोकन

हिन्दी दलित साहित्य में डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर और तथागत बुद्ध के जीवनचरित से सम्बन्धित साहित्य की बहुत बड़ी संख्या है। हर दलित लेखक, रचनाकार, साहित्यकार स्वयं डॉ0 अम्बेडकर के जीवन संघर्ष को, विचारों को जानना चाहता है, समझना चाहता है। उसी प्रकार तथागत बुद्ध के जीवन को, विचारों को दर्शन को, भारतीय प्राचीन इतिहास को, भारतीय संस्कृति को, हिन्दू संस्कृति को जानना चाहता है। इसलिए वह डॉ0 अम्बेडकर के जीवन के बारे में लिखता है, तथागत बुद्ध के जीवन के बारे में लिखता है और सामाजिक परिवर्तन की, सामाजिक क्रान्ति की, सामाजिक प्रतिबद्धता की प्रेरणा भी ग्रहण करता है।

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से डॉ0 अम्बेडकर और तथागत बुद्ध के आदर्शो को खड़ा करने का प्रयास किया है।

निःसन्देह भगवान बुद्ध ने जीवन की ओर देखने की एक नई दृष्टि दी है। भगवान बुद्ध को एक लौकिक पुरूष ऐतिहासिक पुरूष माना जाता है। एक महामानव माना जाता है। जिन्होंने मानव समाज को शान्ति का, समानता का, अहिंसा का, भाईचारे का, सामाजिक लोकतंत्र का उपदेश दिया है। हिन्दी साहित्य में जो स्थिति कबीर और रैदास की थी वही स्थिति तथागत बुद्ध के बारे में भी थी। आज भी बहुत सारे हिन्दूवादी लेखक साहित्यकार तथागत बुद्ध को विष्णु का नौवां अवतार मानकर ही लिखते है।[2] हिन्दी साहित्य में तथागत बुद्ध का जो बहुत ही सुनियोजित ढंग से हिन्दू करण किया गया था। उसको नष्ट करने का काम बोधानन्द महाथेरा,

ISBN: 978-93-93166-10-4

धम्मानद कोसम्बी, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, डॉ0 भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भिक्खु जगदीश कश्यप, डॉ0 भिक्खु धर्मरक्षित, डॉ0 पी0एल0 नरसू, डॉ0 सी0एस0 उपासक, प्रो0 जगन्नाथ उपाध्याय आदि भारतीय बौद्ध भिक्षुओं ने और बौद्ध विद्वानों ने किया है।

महास्थविर भदन्त बोधानन्द जी ने लखनऊ में सन् 1925 में बुद्ध बिहार की स्थापना की थी। उन्होंने इस बुद्ध बिहार के संचालन की व्यवस्था करते हुए लिखा था कि 'मनुष्य जाति में भगवान बुद्ध प्रदर्शित उस लोकोत्तर धर्म का पूर्ण रूप से प्रसार करना है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन में करूणा, मैत्री, समता, संयम, सेवा, सहानुभूति आदि पवित्र भावों का विकास करें तथा अपने सब प्रकार के दोषों और दुःखों का विरोध करके इस व्यक्तिगत जीवन के बाद निर्वाण लाभ करें' और इस बिहार के कार्यों के बारे में लिखते है कि- 1. सब प्राणियों के सुख-दुःखों को अपने ही सुख-दुःखों के समान समझना। 2. जाति भेद के ऊँच-नीच भावों को दूर करके मनुष्य मात्र में समता और सद्योग का प्रचार करना तथा मानवीय उन्नति-विकास और अधिकार की भावनाओं को जागृत करना। इसी उद्देश्य को लेकर महास्थविर बोधानन्द जी ने सन् 1916 में लखनऊ में अपने कार्य को प्रारम्भ किया था। बोधानन्द जी के विचारों का और कार्यों को हिन्दी भाषी लेखकों, साहित्यकारों और विद्वानों पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ा। क्योंकि उन्होंने तथागत बुद्ध के मानवीय रूप को लोगों के सामने रखने का महान कार्य किया था।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भी 'बुद्ध चर्चा' और 'महामानव

ISBN: 978-93-93166-10-4

बुद्ध' आदि ग्रन्थों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में तथागत बुद्ध के मानवीय स्वरूप को रखने का महान् कार्य किया है। आजादी से पहले भारत में जिस तरह से बौद्ध साहित्य का, पालि त्रिपिटक के ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद का आन्दोलन चला उसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी में और हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लेखकों, साहित्यकारों, विद्वानों में बुद्ध की ओर बुद्ध के धम्म को देखने की दृष्टि में बहुत कुछ बदलाव आया। फिर भी कई हिन्दूवादी लेखक, साहित्यकार बुद्ध और उनके धम्म दर्शन को हिन्दू धर्म का ही एक अंग मानते थे और मानते है कि तथागत बुद्ध ने कुछ भी नया नहीं बताया है, जो उपनिषदों में है उसी को बुद्ध ने बताया है इस तरह से उनकी बुद्ध और उनके धम्म, दर्शन की ओर देखने की उनकी दृष्टि है।

लेकिन डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर के आन्दोलन के बाद और विशेष तौर पर उनके बौद्ध आन्दोलन के बाद बुद्ध और उनके धम्म-दर्शन के बारे में सोच में बदलाव आया है।[3] वर्तमान भारत में बुद्ध और उनके धम्म-दर्शन में व्याप्त सामाजिक बदलाव, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक समानता, अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, चार आर्य सत्य, आर्य आस्टांगिक मार्ग, परिवर्तनवाद को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है।

डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर जिस तरह वर्गीय जातीय शोषण, उत्पीड़न के विरोधी थे, उसी प्रकार वे वर्गीय शोषण के घोर विरोधी थे। लेकिन उनकी पहली मान्यता यह थी कि भारत जैसे देश में कुछ सामाजिक वर्गों का जन्म के आधार पर शोषण, उत्पीड़न हो रहा है। जैसे- अछूत जातियों का शोषण, उत्पीड़न और पिछड़ी जातियों का शोषण और उत्पीड़न।

ISBN: 978-93-93166-10-4

इसलिए भारत जैसे देश से सबसे पहले जाति आधारित शोषण उत्पीड़न को समाप्त करने के लिए संघर्ष करना चाहिए। दलित साहित्य केवल दलित शोषण और उत्पीड़न को व्यक्त करने वाला मात्र साहित्य नहीं है। बल्कि दलित साहित्य भारत की ब्राम्हण और हिन्दू व्यवस्था को एक विकल्प देने वाला साहित्य है। दलित साहित्य दलितों को और शोषित तथा पिछड़ी जातियों को एक अलग पहचान, एक अस्मिता, एक अस्तित्व प्रदान करने वाला साहित्य है।

वास्तव में आधुनिक भारत में डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर ने ही दलितों को पिछड़ी जातियों को स्वतंत्र पहचान, स्वतंत्र अस्मिता देने का काम किया है। दलित साहित्य की मूल प्रेरणा है अम्बेडकरवाद और बौद्ध धर्म।[4]

मुख्य पाठ

वैदिक धर्म के कर्मकाण्डों तथा यज्ञीय विधि-विधानों के विरूद्ध प्रतिक्रिया वस्तुतः उत्तर वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। वैदिक धर्म की व्याख्या एक नये सिरे से की गयी तथा यज्ञ एवं कर्मकाण्डों की निन्दा करते हुए धर्म के नैतिक पक्ष पर बल दिया गया। ईसा पूर्व छठीं शताब्दी की बौद्धिक क्रान्ति के लिये तत्कालीन सामाजिक व आर्थिक कारण भी कम उत्तरदायी न थे। वर्ण व्यवस्था की निस्सारता स्पष्ट हो चुकी थी तथा वर्ण कठोर होकर जाति का रूप ले चुके थे। इन बदलती हुई नवीन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों ने नयी-नयी विचारधाराओं के उद्भव एवं विकास में सहायता प्रदान किया। ईसा पूर्व छठीं शताब्दी तक आते-आते वैदिक यज्ञों तथा कर्मकाण्डों के ऊपर की जाने वाली अपव्ययता भी

ISBN: 978-93-93166-10-4

आलोचना का विषय बन गयी।[7]

समय के प्रवाह के साथ नवीन विचारधाराओं का आविर्भाव हुआ। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि इस समय भारत के बाहर भी अनेक देशों में धार्मिक उथल-पुथल मची हुई थी तथा बहुसंख्यक स्वतंत्र विचारक नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहे थे। जिस समय भारत में महावीर तथा बुद्ध का उदय हुआ उसी समय चीन में कनफ्यूशियस तथा लाओत्से, ईरान में जरथुस्त्र, जूडिया में जेरेमिआ तथा यूनान में पाइथागोरस का आविर्भाव हुआ। इन्होंने भी अपने-अपने देशों के परम्परागत धर्मों में व्याप्त कुरीतियों एवं पाखण्डों तथा सामाजिक कुप्रथाओं का खण्डन करते हुए जनता के समक्ष एक सरल तथा आडम्बररहित धर्म का विधान प्रस्तुत किया।

महामानव बुद्ध

ईसा पूर्व छठीं शताब्दी के नास्तिक सम्प्रदाय के आचार्यों में 'महात्मा गौतम बुद्ध' (563-483 ईसा पूर्व) का नाम सर्वप्रमुख है। उन्होंने जिस धर्म का प्रवर्तन किया वह कालान्तर में एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म बन गया।[8] पिछले ढ़ाई हजार वर्षों में भारतीय समाज में परिवर्तन के लिए अनेक मसीहों, संतों, महात्माओं, समाज सुधारकों व राजनीतिज्ञों द्वारा पहल की गई, जिनमें बुद्ध अग्रणी हैं।

वैदिक अनुष्ठानों, यज्ञीय कर्मकाण्डों तथा पशुबलि जैसी कुप्रथाओं का बुद्ध ने जमकर विरोध किया। वे मानव जाति की समानता के अनन्य पोषक थे। अतः उन्होंने ब्राह्मणों की जन्मना श्रेष्ठता के दावे का खण्डन किया। एक सच्चे समाज सुधारक के रूप में वे अपने समकालीन समाज को

ISBN: 978-93-93166-10-4

जाति तथा धर्म के दोषों से मुक्त करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने संघ का द्वारा सभी जाति के लिए खोल दिया था। बुद्ध जटिल दार्शनिक समस्याओं में कभी नहीं उलझें तथा एक नैतिक दार्शनिक के रूप में उन्होंने मनुष्य के नैतिक तथा सामाजिक गुणों के विकास पर ही बल दिया।[9]

उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेक मान्यताओं तथा अंधविश्वासों जैसे-नदियों के जल की पवित्रता, स्वप्न-विचार, जादूगरी, चमत्कारपूर्ण प्रदर्शनों आदि की निन्दा करते हुए उन्हें त्याज्य बताया। काया-क्लेश, घोर तपस्या, संसार-त्याग के भी वे पक्ष में नहीं थे, किन्तु अपने कुछ उत्साही अनुयायियों को उन्होंने संसार त्यागकर भिक्षु जीवन व्यतीत करने को प्रोत्साहित किया, क्योंकि सांसारिक सुखों को वे निर्वाण प्राप्ति के मार्ग में बाधक समझते थे। उनके उपदेशों में आद्योपान्त सरलता एवं व्यावहारिकता दिखायी देती है। बुद्ध के उपदेशों का मूल लक्ष्य मानव जाति को उसके दुःखों से त्राण दिलाना था और इस रूप में उनका नाम मानवता के महान् पुजारियों में सदैव अग्रणी रहेगा।

अनीश्वरवादी बुद्ध ने ईश्वर के स्थान पर मानव प्रतिष्ठा पर ही बल दिया। महात्मा बुद्ध मानवतावाद के प्रबल व्याख्याकार थे। उनके अनुसार मानव का लौकिक और पारलौकिक उत्कर्ष धर्म की आधारशिला पर होता है।[10] महाकरूणा बौद्ध धर्म की आधारशिला है। जिस ओर महाकरूणा की प्रवृत्ति होती है उसी ओर समस्त बौद्ध धर्म की प्रवृत्ति होती है। समस्त जीवों का हित, सुख-सम्पादन ही बोधिसत्व का उद्देश्य है। जब तक विश्व के क्षुद्रातिक्षुद्र जीवों को दुःख से मुक्ति नहीं मिल जाती, तब तक बोधिसत्व व

ISBN: 978-93-93166-10-4

मुक्ति की कामना नहीं करते हैं।

'प्रतीत्यसमुत्पाद' ही बुद्ध के उपदेशों का सार है तथा बुद्ध की समस्त शिक्षाओं का आरम्भ-स्तम्भ है।[11] सर्वत्र दुःख की अपरिहार्यता का अनुभव कर भगवान बुद्ध ने सम्पूर्ण मानव जाति को इस दुःख से छुटकारा दिलाने हेतु चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया। प्रतीत्यसमुत्पाद में दुःख के कारणों को निर्दिष्ट करके उनसे मुक्ति के उपाय बताए गए है। वस्तुतः उनका धर्म था मोक्ष के मार्ग का निर्देशन करना। उनके धर्म का लक्ष्य था मनुष्य को सांसारिक वेदना और कष्ट से मुक्त करना।

संसार के आवागमन के चक्र से बचने के लिए अर्थात् सम्पूर्ण दुःखों को अन्त कर निर्वाण प्राप्ति के लिए आष्टाँगिक मार्ग के अनुपालन का निर्देश दिया।[12] शील तथा समाधि से प्रज्ञा की प्राप्ति होती है जो सांसारिक दुःखों से मुक्ति पाने का मूल साधन है। बौद्ध धर्म में मानवता के विकास के लिए 'पारमिता-साधना' की व्यवस्था है। पालि बौद्ध शास्त्र में दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एवं प्रज्ञा पारमिताओं का उल्लेख किया गया है।

महात्मा बुद्ध जीव और जगत् के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते थे। उनके विभिन्न प्रवचनों और उपदेशों में उनके जीवन-दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इस प्रकार बुद्ध एक नए प्रकार से मुक्त मानव के विकास का उद्देश्य लेकर चले थे। वे मानव को पूर्वाग्रहों से मुक्त देखना चाहते थे। एक ऐसा मानव उनका उद्देश्य था जो अपनी आत्मा को अपना दीपक- 'आत्मदीप' बनाकर अपने भविष्य का स्वयं निर्माण करने के लिए संकल्पित हो।[13] उनका मानववाद जातीय एवं राष्ट्रीय अवरोधों को पार कर जाता है।

ISBN: 978-93-93166-10-4

दासता से उन्हें घृणा थी। स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता के वे पोषक थे।

वे सार्वभौम उत्थान में विश्वास रखते थे इसलिए समस्त मानव को सत्य के निकट लाना चाहते थे। बुद्ध ने मानव जाति की समानता का आदर्श प्रस्तुत किया था। इसके कारण ही भारत का विश्व के देशों पर नैतिक आधिपत्य कायम हुआ।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर -

आधुनिक युग में दलितों की स्थिति में सुधार में अन्य किसी व्यक्ति की तुलना में 'डॉ.अम्बेडकर' (1891-1956) का योगदान अधिक मौलिक व महत्वपूर्ण है, जिसे देखते हुए उन्हें दलितों का मसीहा भी कहा जाता है। किन्तु उनका कार्य दलितों की मुक्ति तक सीमित नहीं था। व्यापक परिपे्रक्ष्य में विचार करने पर हम पाते हैं कि उनका वास्तविक उद्देश्य एक न्यायपूर्ण समाज की रचना करना था, जिसमें वर्ण और जाति का कोई स्थान नहीं हो और एक ऐसी संस्कृति को स्थायित्व प्रदान करना था जो भारतीय तो हो किन्तु वर्ण और जाति के स्थान पर वह लोकतांत्रिक समाज को संपोषित करती हो। अपने चार दशकों के सार्वजनिक जीवन में वे अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में निरन्तर लगे रहे। लोकतांत्रिक संविधान के निर्माण तथा बौद्ध धर्मांतरण के माध्यम से देश में सांस्कृतिक क्रान्ति के आगाज में महत्वपूर्ण भूमिका के निर्वाह के द्वारा उन्हें इस उद्देश्य की पूर्ति में काफी कुछ सफलता भी मिली।[14]

डॉ. अम्बेडकर के बहुमुखी चिंतन, अनुशीलन एवं शोध का सारभूत तत्व है आदर्श समाज की उनकी परिकल्पना, जिसे साकार करने के लिए वे

ISBN: 978-93-93166-10-4

जीवनपर्यंत संघर्ष करते रहे। हजारों साल की विरासत के रूप में जो समाज आज़ादी के समय लोगों को मिला वह असमानता और भेदभाव पर आधारित था। उनके अनुसार, भारतीय समाज व्यवस्था एक अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था थी।

डॉ. अम्बेडकर की विभिन्न रचनाओं विशेष रूप में 'कास्ट इन इंडिया (1977)', 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' (1937), 'हू वेयर द शूद्राज़' (1946), 'द अनटचेबुल्स' (1948) तथा 'द रिडल्स ऑफ हिंदुइज़्म' (1987) को यदि देखा जाए तो यह पता लगता है कि उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से परम्परागत समाज में अन्याय के विद्यमान स्वरूपों की परत-दर-परत खोलने की कोशिश की ताकि उसकी जड़ों तक पहुँचकर उसके सही कारणों को ढूँढ़ा जा सके और उसका सही निदान प्रस्तुत किया जा सके।

अम्बेडकर समाजवाद के पक्षधर तो थे किन्तु भारत में वे समाजवादी आर्थिक क्रान्ति की जगह सामाजिक क्रान्ति लाए जाने पर ज्यादा ज़ोर देते थे, क्योंकि उनका मानना था कि सामाजिक क्रान्ति के बिना आर्थिक व राजनैतिक क्रान्तियों का भारतीय समाज में कोई अर्थ नहीं है और यदि ये क्रांतियाँ घटित भी होती हैं तो सामाजिक क्रान्ति के अभाव में ये कभी स्थायी नहीं हो सकती।[15]

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, एक आदर्श समाज में स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व तीनों का होना जरूरी है। स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व अम्बेडकर की दृष्टि में जहाँ सामाजिक न्याय के निर्णायक ताव तव हैं वहीं लोकतांत्रिक

ISBN: 978-93-93166-10-4

समाज के आधारभूत सिद्धान्त भी हैं। डॉ. अम्बेडकर ने वंचित पीड़ित और दमित मानवता को मौलिक स्वतंत्रता व नागरिक अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष शुरू किया।

फ्रेंच दार्शनिक रूसों के तीन शब्दों समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व से वह अत्यन्त प्रभावित थे। समानता पर आधारित न्याय की अवधारणा को स्वीकार कर वह रूसों से आगे बढ़ गए। डॉ. अम्बेडकर की न्याय सम्बन्धी अवधारणा एक ऐसी सामाजिक पद्धति के पक्ष में है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्धों पर आधारित न्याय की अवधारणा को स्वीकार कर वह रूसों से आगे बढ़ गए। डॉ0 अम्बेडकर की न्याय सम्बन्धी अवधारणा एक ऐसी सामाजिक पद्धति के पक्ष में है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्धों पर आधारित हो। सामाजिक क्रान्ति को साकार करने के उद्देश्य से बौद्ध धर्मांतरण द्वारा अम्बेडकर ने धम्म चक्र प्रवर्तन कर देश में सामाजिक व सांस्कृतिक क्रान्ति का शंखनाद कर दिया।

बौद्ध दर्शन की पुर्नव्याख्या करके उसके महत्वपूर्ण तथ्यों का विश्लेषण किया तथा उसके भारतीय सामाजिक समस्या के निराकरण हेतु एक हल के रूप में प्रस्तुत किया। डॉ0 अम्बेडकर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'Buddha and his Dhamma' में भगवान बुद्ध के धर्म का वर्गीकरण किया है- पहला वर्ग 'धर्म' है, दूसरा वर्ग 'अधर्म' एवं तीसरा वर्ग जिसे उन्होंने 'सद्धर्म' कहा है। तीसरा वर्ग 'धर्म के दर्शन' के लिए है।[16] इस प्रकार बुद्ध का शासन अपनी मौलिकता लिये हुए है। बौद्धमत को भारत में पुर्नजीवित करने का श्रेय डॉ0 अम्बेडकर को जाता है। बुद्ध के मौलिक सिद्धांतो पर

ISBN: 978-93-93166-10-4

आधारित इस धर्म को उन्होंने 'नव-बौद्ध' की संज्ञा से अभिहित किया।

निष्कर्ष

कभी-कभी समाज की प्राचीनता के साथ उत्पन्न रूढ़ियाँ उस समाज की गति को अवरूद्ध कर देती हैं। उसके तरूणों की धमनियों का रक्त जमा हुआ दीखता है। लोग निराशा और हतोत्साह में अपना जीवन जीते रहते है। उस समय कोई व्यक्ति अपनी अकल्पनीय संघर्ष शक्ति से उस समाज को झकझोंर कर उठाता है और आगे बढ़ने की सामथ्य उत्पन्न करता है। धीरे-धीरे समाज स्वयं अपने सामथ्य को पहचानता है और उस व्यक्ति के कृतित्व से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ता चलता है। 'महात्मा बुद्ध' एवं 'बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर' ऐसे ही महापुरूष थे, जिन्होंने अपने समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति जागृत करने हेतु तथा मानव समाज व संस्कृति में परिवर्तन की प्रमुख धाराओं को रेखांकित की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया हैं। इस चिरंजीवी राष्ट्र के नवनिर्माण को ही अपना साध्य समझा।[17] भारत में धर्मों और आध्यात्मिक विचारधाराओं में बौद्ध धर्म एक प्रमुख धर्म है। बौद्ध धर्म जीवन का एक ऐसा मार्ग है जिसमें स्वतंत्रता, समानता, तर्क प्राणिमात्र के दया, करूणा एवं सदाचार पर विशेष बल दिया गया है। विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार ने भारत को विश्व के नैतिक व आध्यात्मिक गुरू के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। बौद्ध धर्म अपनी ही जन्मस्थली से लुप्तप्राय हो गया था। जिसे पुर्नजीवित करने का श्रेय डॉ. भीमराव अम्बेडकर को जाता है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर एक दार्शनिक थे जिन्होंने विश्व के प्रमुख धर्मो

ISBN: 978-93-93166-10-4

के मूल सिद्धान्तों की भारत में विद्यमान सामाजिक स्थिति की दृष्टि से समीक्षा की। डॉ. साहेब ने धर्म को वैयक्तिक आत्माओं के आध्यात्मिक मोक्ष के एक साधन के रूप में नहीं देखा, अपितु एक 'सामाजिक आदर्श' समझा जो मानव-मानव के बीच सम्यक् सम्बन्ध स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम बने। उनके अनुसार स्वतंत्र समाज के लिए धर्म आवश्यक है। धर्म का अर्थ दैवी शासन की आदर्श योजना का प्रतिपादन करना है, जिसका उद्देश्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाना है, जिसमें मनुष्य नैतिक जीवन व्यतीत कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राम गोपाल सिंह - डॉ0 अम्बेडकरः सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, पृ0 174. (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2006)।*
2. *डॉ0 विमल कीर्ति - दलित साहित्य में बौद्ध धम्म दर्शन और चिन्तन का प्रभाव, पृ0 163 (नवभारत प्रकाशन, 2018-19)।*
3. *डॉ0 विमल कीर्ति - दलित साहित्य में बौद्ध धम्म दर्शन और चिन्तन का प्रभाव, पृ0 164 (नवभारत प्रकाशन, 2018-19)।*
4. *डॉ0 विमल कीर्ति - दलित साहित्य में बौद्ध धम्म दर्शन और चिन्तन का प्रभाव, पृ0 161 (नवभारत प्रकाशन, 2018-19)।*
5. *डॉ0 विमल कीर्ति - दलित साहित्य में बौद्ध धम्म दर्शन और चिन्तन का प्रभाव, पृ0 169 (नवभारत प्रकाशन, 2018-19)।*
6. *डॉ0 विमल कीर्ति - दलित साहित्य में बौद्ध धम्म दर्शन और चिन्तन का प्रभाव, पृ0 175 (नवभारत प्रकाशन, 2018-19)।*
7. *कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 818 (यूनाइटेड बुक डिपो, 2012-13)।*
8. *कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 824 (यूनाइटेड बुक डिपो, 2012-13)।*
9. *कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 827 (यूनाइटेड बुक डिपो, 2012-13)।*

ISBN: 978-93-93166-10-4

10. *डॉ0 किरण कुमारी - धर्म और दर्शन, पृ0 135 (न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, 2004)।*
11. *कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 826 (यूनाइटेड बुक डिपो, 2012-13)।*
12. *डॉ0 किरण कुमारी - धर्म और दर्शन, पृ0 138 (न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, 2004)।*
13. *डॉ0 किरण कुमारी - धर्म और दर्शन, पृ0 134 (न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, 2004)।*
14. *राम गोपाल सिंह - डॉ0 अम्बेडकरः सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, पृ0 191-192 (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2006)।*
15. *राम गोपाल सिंह - डॉ0 अम्बेडकरः सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन, पृ0 6 (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2006)।*
16. *डॉ0 ए0वी0 कौर - भारत में बौद्ध धर्म के प्रमुख प्रणेता, पृ0 153 (यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2013)।*
17. *डॉ0 कृष्ण गोपाल - बाबा साहब व्यक्ति और विचार, पृ0 4 (सुरूचि प्रकाशन, 1994)।*